Appendix-113 (Hindi Version)
Resolution No. 38 {38-1 [38-1-13(7)]}

Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi
दूरस्थ एवं सतत शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

बी.ए.(ऑनर्स) राजनीति विज्ञान

सेमेस्टर-I

कोर्स क्रेडिट-4

Discipline Specific Core Course (DSC-1)

राजनीतिक सिद्धांत की समझ
(Understanding Political Theory)

As per the UGCF and National Education Policy 2020

Editorial Board

Dr. Mangal Deo

Dr. Shakti Pradayani Rout

Dr. Sudhir Kumar Parida

Content Writers

Vishal Kumar Gupta, Virender Kumar,
Rajinder Kumar, Kajal, Komal

© **Department of Distance and Continuing Education**

Ist edition: 2022

E-mail: ddceprinting@col.du.ac.in
politicalscience@col.du.ac.in

Published by:

Department of Distance and Continuing Education under
the aegis of Campus of Open Learning, University of Delhi

Printed by:
School of Open Learning, University of Delhi

Table of Contents

Sl. No.	Title	Writer/Translator	Pg. No.
Unit-1	राजनीति क्या है: 'राजनीति' का सैद्धांतिकरण	विशाल कुमार गुप्ता और वीरेन्द्र कुमार	01
Unit-2	राजनीतिक सिद्धांत के दृष्टिकोण: मानक, ऐतिहासिक और अनुभवजन्य	राजिन्दर कुमार	12
Unit-3	राजनीतिक सिद्धांत की परम्परा : उदारवाद, मार्क्सवाद, अराजकतावाद और रूढ़िवाद	कोमल	25
Unit-4	राजनीतिक सिद्धांत में महत्वपूर्ण दृष्टिकोण: नारीवादी और उत्तर आधुनिक	राजिन्दर कुमार	42
Unit-5	राजनीतिक समुदाय का विचार : राजनीतिक दायित्व	काजल	54

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-1

राजनीति क्या है : 'राजनीति' का सैद्धांतिकरण

लेखक : **शालिनी सिंह**
अनुवादक : **विशाल कुमार गुप्ता** और **वीरेन्द्र कुमार**

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 परिचय
1.3 'राजनीतिक' सिद्धांत
1.3.1 राजनीति सामाजिक नहीं है
1.3.2 नैतिकता की अवधारणा
1.3.3 राजनीतिक नैतिकता
1.3.4 राजनीतिक राज्य
1.4 निष्कर्ष
1.5 अभ्यास प्रश्न
1.6 संदर्भ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, हम समझ पायेंगे:

- राजनीतिक की अवधारणा को समझने के लिए
- सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक के बीच अंतर करने के लिए
- राजनीति के संबंध में राज्य की भूमिका को समझने के लिए

1.2 परिचय

राजनीतिक सिद्धांत से तात्पर्य उस अवस्था से है जहाँ राजनीति का प्रयोग सरकार के विज्ञान और कला के रूप में किया जाता है। यह शासन तथा सार्वजनिक मामलों से संबंधित होती है। सरकार और सार्वजनिक मामले यह दो शब्द सहसंबंध में उपयोग किए जाते हैं और दुनिया के अर्थ को आकार देने में भी सहायक होते हैं, जहाँ सरकार को सार्वजनिक मामलों से

© DDCE/SOL/University of Delhi
© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

निपटना पड़ता है। यह एक बहुत व्यापक धारणा है और राजनीति शब्द की ठोस और खंडित समझ नहीं देती है। एक शब्द के रूप में राजनीति पर व्यापक रूप से चर्चा और बहस हुई है तत्पश्चात् 'राजनीति क्या है' फिर भी इस पर एक आम समझ पर सहमति नहीं बनी है। हालाँकि, यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसे हर व्यक्ति ने किसी-न-किसी तरह से समझा है। वास्तव में राजनीति क्या है इसके सार पर एक राय करना उचित नहीं हो सकता है? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग राय हो सकती है, लेकिन मानव प्रकृति होने के नाते राजनीति के दायरे के बारे में सोचने के लिए बाध्य है। राजनीति का विस्तार व्यापक है, राजनीति का विस्तार अस्तित्व के गुण से परे किसी की सामाजिक और राजनीतिक पहचान तक जाता है और यह किसी के अस्तित्व से लेकर उसके मानव होने की प्रकृति, सामाजिक प्राणी और एक राजनीतिक प्राणी तक हो सकती है।

1.3 'राजनीतिक' सिद्धांत

राजनीति शब्द को विभिन्न विद्वानों ने अपनी कलम से परिभाषित किया है। *हेरोल्ड. जे. लासवेल* ने राजनीति को इस विचार के रूप में परिभाषित किया है कि ***किसे क्या, कब और कैसे मिलता है?*** उनका विचार लोगों को उनके अधिकार प्रदान करने में नागरिकों के अधिकारों और राज्य की संस्थागत प्रक्रिया की वकालत करता है। ***डेविड ईस्टन*** ने राजनीति को ***'समाज के लिए मूल्यों के आधिकारिक आवंटन'*** के रूप में वर्णित किया है। मूल्यों की उनकी अवधारणा मूल्यों के एक समूह के बारे में बात करती है जिसका पालन करने के लिए राज्य द्वारा व्यापक रूप से सहमति व्यक्त की जाती है। राज्य का मार्गदर्शन करने वाले मूल मूल्यों का विचार राजनीति के विचार में निहित है। ईस्टन अपने मूल्य के विचार के बारे में बात करता है, और कहते हैं कि वह कुछ भी हो सकता है जो समाज, विचारधारा, लक्ष्य, सामाजिक रैंकिंग या किसी भी मूल सार द्वारा मूल्यवान हो, जिसे शासन चलाने के लिए बेंचमार्क माना जाता है। शब्द मूल्य एक आश्रित चर है और आवश्यकताओं, माँग या वरीयताओं के अनुसार एक वर्ण आवंटित किया जा सकता है। *बर्नार्ड क्रिक* ने राजनीति को शासन के एक विशिष्ट रूप के रूप में परिभाषित किया है जहाँ लोग संस्थागत तंत्र के माध्यम से अपने भलाई के लिए, सार्वजनिक नीति को स्पष्ट करने के लिए, मतभेदों को समझने और हल करने के लिए एक साथ आते हैं। बर्नार्ड क्रिक का प्रस्ताव, ***सुलह, सौदेबाजी और साझा*** समझ के विचार पर जोर देता है। उपरोक्त समझ की परिणति राज्य द्वारा तैयार की गई नीतियों में प्रकट होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीति एक ऐसे विचार के रूप में सामने आती है जो राज्य और समाज के जुड़ाव के अंतर्गत आती है। राज्य, सरकार और समाज के साथ व्यक्तियों के समूह के साथ प्रतिध्वनित होता है। दोनों शासन के विचार से जुड़े हुए हैं तथा साथ-ही-साथ राजनीति के पहलुओं से जुड़ा हुआ है। हालाँकि, राजनीति का विचार राज्य और समाज की मूल अवधारणा को विघटित कर देता है। दोनों के बीच मुख्य अंतर को आमतौर पर नजरअंदाज कर दिया जाता है और दोनों के बीच संबंधों पर ध्यान आकर्षित किया जाता है जो बदले में राजनीतिक क्षेत्र को रेखांकित करता है। राजनीति क्या है अक्सर एक शून्य परिकल्पना द्वारा परिभाषित किया जाता है। यह एक चर की अनुपस्थिति है जो राजनीति की उपस्थिति को मान्य करती है। यदि भेद किया जाये तो राज्य के भीतर के मामले राजनीति के दायरे में आते हैं, लेकिन अंतर-सामाजिक मामले जो सत्ता के पुनर्वितरण और वैधता की मंजूरी से संबंधित हैं, राजनीति के विचार के बाहर हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.3.1 राजनीति सामाजिक नहीं है

वह चर जिसकी अनुपस्थिति राजनीति की उपस्थिति को मान्यता देती है उस स्थिति को 'सामाजिक' स्थिति कहते है। दो चरों की अन्योन्याश्रयता की जाँच करने से पहले, आइए देखें कि **राजनीतिक क्या है? क्या यह राजनीति से अलग है?** राजनीति शब्द की उत्पत्ति अरस्तू की मुख्य रचना 'पॉलिटिका' से हुई है, जिसका अर्थ होता है **'नगरों के मामले'**। राजनीति वह चरित्र-चित्रण है जो राजनीति के गुण से आता है। राजनीति को एक स्थिर शब्द के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, लेकिन राजनीतिक शब्द एक गतिशील और पुनर्निवेश शब्द है क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति और संस्था को गुण और विशेषताएँ प्रदान करता है। वर्षों से समाज को कैसे देखा और समझा गया है, इस धारणा ने सामाजिक को राजनीतिक रूप से घेरने की अक्सर कोशिश की है। सामाजिक शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'सोशियस' से हुई है जिसका अर्थ होता है **मित्र**। सामाजिक शब्द की धारणा सौहार्दपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण और स्थायी होने में निहित है। इसमें सह-अस्तित्व का गुण होता है और इस प्रकार यह लोगों के एक साथ आने के विचार के बारे में है। अरस्तू के विचार से मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा एक सहकारी इकाई के रूप में व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति की समझ पर आधारित है, जिसके अस्तित्व के उद्देश्य और अर्थ साझा हैं। मनुष्य की पहचान राज्य से नहीं बल्कि सामाजिक इकाई होने के गुणों से होती है। राजनीतिक संस्थाएँ, इसके गुण और कार्य इसकी प्रवृत्ति में स्वाभाविक रूप से सामाजिक हैं। हालाँकि, दावा यह किया जाता है कि राजनीतिक सामाजिक नहीं है। लेकिन क्या राजनीतिक में सामाजिक के कुछ गुण हो सकते हैं? यदि उसमें सामाजिक के विशिष्ट लक्षण हों, तो क्या वह सामाजिक हो सकती है? इस प्रश्न को समझने के लिया हमें यह समझना होगा कि राजनीतिक क्या है?

क्या नागरिकता राज्य के सदस्यों को पहचान प्रदान करती है? क्या सदस्यता और नागरिकता का विचार इसके अभिविन्यास में भिन्न है? एक नागरिक के आधार पर किसी व्यक्ति के मूल अधिकार संविधान में निहित हैं, जबकि एक व्यक्ति का पारस्परिक दृष्टिकोण एक सामाजिक प्राणी होने की चेतना से उत्पन्न होता है। सामाजिक सदस्यता के गुण उन अधिकारों से भिन्न होते हैं जो एक व्यक्ति राज्य की नागरिकता के रूप में ग्रहण करता है, सदस्यता प्राप्त की जाती है जबकि नागरिकता प्रदान की जाती है। यह राज्य है जो नागरिकता को नियंत्रित करता है तथा नागरिकता को पवित्रता प्रदान करने वाला एक बाहरी प्राधिकरण है। लेकिन समुदाय एक सामूहिक विवेक है जो कि एक आधिकारिक स्थिति बताता है। परोपकार, दान, या किसी अन्य प्रकार की शारीरिक सहायता के परोपकारी कार्य के माध्यम से समाज की भलाई में योगदान करता है। विभिन्न जाति, रंग और संस्कृति के लोगों को आत्मसात करके एक शांतिपूर्ण, रहने योग्य और सहिष्णु समाज का पोषण करता है। अपने पड़ोसी का सम्मान करके और सामाजिक न्यायों का पालन करते हुए समाज में सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखता है। पर्यावरण के प्रति जागरूकता फैलाने और पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ जीवन शैली का पोषण करके जिम्मेदारी की भावना फैलाता है। ये सभी गुण एक अच्छे इंसान होने के गुणों से आते हैं न कि अनेकों कानून का पालन करने वाले नागरिक होने की पहचान से। एक नागरिक राज्य द्वारा निहित कर्तव्यों का पालन कर सकता है और अपने अधिकारों का लाभ उठा सकता है। हालाँकि, लोगों के समूह के सामाजिक संवर्धन में योगदान करने के लिए नागरिकता कोई पूर्व शर्त नहीं है। समाज का हर वर्ग अरस्तू के राज्य का नागरिक नहीं था, लेकिन सभी ने उस भूमि से संबंधित होने की भावना को आत्मसात कर लिया जिसमें वे रहते थे।

राष्ट्रवाद के प्रश्न ने सामाजिक और राजनीतिक के बीच की सीमाओं को धुंधला कर दिया है। राष्ट्र और राज्य का

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विमर्श अपने आप में सामाजिक और राजनीतिक का प्रश्न है। राष्ट्र में अपनेपन की भावना होती है, इसमें जाति, धर्म, और जातीयता के तत्व होते है। जबकि राज्य सरकार के एक अधिकार से बंधी क्षेत्रीय सीमा है। एक विचार के रूप में राष्ट्रवाद, राज्य को एक उन्मुखीकरण जैसे समुदाय की ओर ले जाता है जहाँ व्यक्ति एकजुटता के बंधन से एकजुट होते हैं और विश्वासों और विचारों के एक सामान्य समूह से जुड़े होने की भावना से बंधे होते हैं। जितना अधिक राज्य अपने कार्यों के दायरे का विस्तार करता है और एक समुदाय या परिवार जैसे स्वैच्छिक संघ की विशेषताओं को ग्रहण करता है, समाज उतना ही कमजोर होता जाएगा (एट्ज़ियोनी, 2003)। नागरिकता और सदस्यता के बीच के अंतर को सीमांकित और महसूस किया जा सकता है यदि एक राज्य-समाज और राज्य-व्यक्ति के संबंधों के बीच एक सादृश्य खींचा जाये।

सामाजिक और राजनीतिक के बीच का अंतर, यदि इस बात पर आधारित हो, तो समाज में एक बड़े संवाद की ओर जाता है, जिसकी परिणति सामाजिक कल्याण नीतियों में होती है। सार्वजनिक नीतियाँ जो प्रशासनिक सरोकारों से परे जाती है, और समाज के हाशिए पर पड़े, दलित और कमजोर वर्गों के हितैषी बनकर लोगों को सुरक्षा-जाल प्रदान करती हैं। व्यक्तियों के हितों के पुन: एकत्रीकरण और अभिसरण के इस विचार को बर्नार्ड क्रिक ने अपनी प्रसिद्ध कृति '*इन डिफेंस ऑफ पॉलिटिक्स*' में उल्लेखित किया है। नीति निर्माण का विचार राज्य की राजनीति को साकार करता है। राजनीतिक आधार में सामाजिक संदर्भ को आत्मसात करना, जिसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक नीति का निर्माण होता है, वह आधार है जिस पर क्रिक ने राजनीति के अपने विचार का निर्माण किया है। हालाँकि, सामाजिक और राजनीतिक के बीच का सीमांकन एक ऐसी रेखा को भी इंगित करता है जहाँ दोनों के बीच के अंतर का उल्लंघन होता है। राजनीतिक और सामाजिक अपने अभिविन्यास और दृष्टिकोण में भिन्न हैं लेकिन एक दूसरे के लिए स्थिति बहाल कर रहे हैं।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

1.3.2 नैतिकता की अवधारणा

नैतिकता की अवधारणा 'अच्छाई' पर टिकी हुई है। अच्छाई का विचार व्यक्तिपरक है लेकिन नैतिक प्रतिमान में, केवल सार्वभौमिक अच्छी है जो नैतिकता का आधार बनती है। अच्छाई के साथ जो स्वीकृति आती है वह है नैतिकता का विचार राज्य और समाज का अभ्यास। यदि नैतिकता में व्यक्तिपरक अच्छाई नहीं होती, तो क्या राज्य और समाज एक ही समय में अच्छे हो सकते हैं या क्या वे अच्छे के अपने उन्मुखीकरण में भिन्न हैं। सामाजिक रूढ़िवादी इसे एक अच्छा समाज बनाने के लिए सामाजिक गुणों को विकसित करने के लिए नागरिकता के विचार से परे जाते है तथा राज्य को विशेषाधिकार के रूप में मानते हैं। राज्य में मानव व्यवहार को विनियमित करने की क्षमता है, और एक व्यक्ति की विशेषताओं में आधुनिकता लाने की क्षमता भी है। लोग स्वभाव से स्वयंभू होते हैं और अपनी स्वतंत्रता का फायदा उठाने और दूसरों की जरूरतों के प्रति असंवेदनशील बनने की प्रवृत्ति रखते हैं। रूढ़िवादी प्रवचन में राज्य द्वारा सदाचार के विचार को आकार दिया गया है। उनका एक विश्वास जिसे सामाजिक रूढ़िवादियों द्वारा समर्थन दिया गया है, वह है एक 'मजबूत राष्ट्रीय सरकार' की आवश्यकता। जो एक व्यक्ति की विशेषताओं को ढालेगी और नागरिकों के कमजोर पहलू को संतुलित करेगी। (ब्रूक्स/क्रिस्टल 1997)।

सामाजिक रूढ़िवादी राज्य को एक संस्था के रूप में देखते हैं, जो अपने विषयों के लिए 'अच्छे' होने का उन्मुखीकरण प्रदान करता है। 'अच्छे राज्य' का विचार व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कमजोर करने के लिए राज्य को नियंत्रित करने पर केंद्रित नहीं होता है। समुदायवादी समाज को नैतिक व्यवहारों को बढ़ावा देने की एक एजेंसी के रूप में देखते हैं। आचरण नैतिक रूप से अच्छा व्यवहार एक एजेंसी की निर्धारित अनुमेयता से परे, व्यक्तिगत दायरे में चलाया जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

व्यवहार का नैतिक गुण राज्य के तंत्र से परे है। यह राज्य और उसके नागरिकों के भरोसेमंद संबंधों से परे, राज्य के सदस्यों के बीच विश्वास, सद्भाव और सौहार्द के रिश्ते की ओर बढ़ता है। एक न्यायसंगत और समतामूलक समाज का सामाजिक अभिविन्यास, जहाँ राज्य नहीं बल्कि नागरिक समाज के कमजोर और वंचित वर्गों के लिए अपना हाथ बढ़ाते हैं। लेकिन केवल मूल मूल्यों के सीमित सेट के साथ, यह उतना विस्तृत और समग्र नहीं है जितना कि एक उदार राज्य या एक सरकार केंद्रित समाज में है। अच्छाई की सामाजिक धारणा में अच्छाई का दायरा विशेष रूप से सीमित है। अच्छे के सूत्र क्रमशः राजनीतिक और समाज के दृष्टिकोण में भिन्न हो सकते हैं। हालाँकि, जो गतिशीलता को आकार देता है वह यह है कि यदि सूत्रीकरण के बीच एक प्रतियोगिता है, तो अच्छे के एक स्पष्ट विचार को बनाए रखने में अंतर को कैसे संतुलित किया जाता है।

1.3.3 राजनीतिक नैतिकता

प्रत्येक राजनीतिक क्रिया का एक नैतिक आधार होता है। नैतिकता बहाने से रहित कोई राजनीतिक विचार-विमर्श नहीं है। बल्कि 'नैतिकता' का उपयोग नैतिक सामाजिक मूल्यों की एक विस्तृत श्रृंखला से संबंधित है जो न्याय और समानता के मानक विचारों में निहित हैं। यह विचार नैतिकता की सीमित और व्यक्तिगत समझ तक ही सीमित नहीं है। राजनीतिक सिद्धांत की उदारवादी समझ के अनुसार, नैतिकता का दायरा सार्वजनिक और राजनीतिक के दायरे में नहीं होना चाहिए। नैतिकता विचार-विमर्श निजी क्षेत्र तक ही सीमित है। उदारवादियों को डर है कि सार्वजनिक क्षेत्र में नैतिकता की घुसपैठ एक सांस्कृतिक युद्ध को गति प्रदान कर सकती है। सार्वजनिक क्षेत्र राज्य के दायरे में आता है, जहाँ राज्य का उन्मुखीकरण और राजनीति का विचार अनिवार्य रूप से तटस्थ रहना चाहिए। सार्वजनिक मंच पर नैतिकता के समर्थन को साझा मूल्यों के जबरदस्ती और प्रचार के रूप में माना जा सकता है।

'तटस्थता' की सीमा और राज्य की 'स्वायत्तता' के सार की अवधारणा उदारवादियों के बीच भिन्न है। उदारवादियों के एक वर्ग का मानना है कि आलोचनात्मक सोच जैसे व्यक्तिगत गुण राज्य की योग्यता को बनाए रखते हैं (गुटमैन, 1987)। उदारवादियों का एक समकक्ष भी इस बात का समर्थन करता है कि बर्लिन ने क्या अनुसरण किया, मूल्यों का एक सीमित समूह जो सार्वजनिक मंच पर विचार-विमर्श, चर्चा और सहमति पर आधारित है, नैतिकता का एक अंतर्निहित विचार है जो राज्य का दावा और प्रचार करता है। उदाहरण के लिए, किसी भी समाज में चोरी, बलात्कार और हत्या को फटकार लगाई जा रही है। सजा की प्रकृति हालाँकि, किसी विशेष समाज द्वारा स्वीकृति में विसंगति हो सकती है। राज्य या तो मृत्युदंड में विश्वास कर सकता है, या वह इसके बारे में तटस्थ हो सकता है। इच्छामृत्यु या दया हत्या एक और मुद्दा है जो विवाद का विषय रहा है और अलग-अलग राज्यों ने इसे कैसे माना है, इसमें भिन्नता है। स्वीकृति का सबसे समकालीन उदाहरण एलजीबीटी अधिकारों में स्पष्ट है, जहाँ विभिन्न राज्यों का समुदाय के विभिन्न पहलुओं पर अलग-अलग दृष्टिकोण है। हालाँकि, विभिन्न मूल्यों का समर्थन करना निर्विवाद डिब्बों में विभाजित नहीं है। भिन्न और अपूरणीय मूल्यों की सदस्यता लेने से राजनीतिक गतिरोध नहीं होता है। सार्वजनिक नीति का निर्माण विचारों के अंतर को समेटने और इष्टतम उपयुक्तता के लिए एक मध्यम मार्ग अपनाने के लिए किया जाता है।

समुदायवादी शब्द एक सुविधाजनक बिंदु से आते हैं जो कि राजनीति को साझा मूल्यों और नैतिकता की समझ को फिर से परिभाषित करता है। स्वतंत्र और लोकतंत्र समाज की समकालीन राजनीति मांग एकत्रीकरण और अभिव्यक्ति के स्तंभ पर टिकी हुई है। व्यापक सहमति, मूल्यों, विश्वासों और मांगों के सामान्य आधार के अभाव में उथल-पुथल और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

असंतोष होता है, जैसा कि इजरायल के यहूदी और अरबी नागरिक के बीच दिखाई देता है। एक राज्य में समुदायों के बीच आम सहमति लोकतंत्र की शांति और पवित्रता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संघर्ष के कारणों में मतभेद और उनकी जाति, वर्ग, जाति, क्षेत्र और भाषा द्वारा परिभाषित नागरिकों के विभिन्न समूह को नियंत्रित करने में आम सहमति की कमी से उत्पन्न होते हैं। कानून एक तटस्थ मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है और नैतिकता के सार को कायम रखते हुए राज्य तंत्र के विवेक के रूप में कार्य करता है। कानून कभी भी नैतिक रूप से तटस्थ नहीं हो सकता है लेकिन इसे राज्य के मामलों के निर्णय में निष्पक्ष और बुद्धिमान होना चाहिए। कानून को अपनी प्राथमिकताओं और संबद्धता के मामले में तटस्थ होना चाहिए। इसे बहुसंख्यकों पर बहुमत की इच्छा थोपने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज के विशेषाधिकार को कायम रखना है।

1.3.4 राजनीतिक राज्य

प्रश्न यह उठता है कि क्या नैतिकता की दो अवधारणाएँ हैं, एक समाज के लिए और एक राज्य के लिए। यदि वे भिन्न हैं, तो क्या वे कभी अभिसरण करती हैं?

- मतभेदों के परिणाम क्या हैं?
- नागरिक किस धारणा का पालन करता है?
- क्या 'अच्छे समाज' और 'अच्छे राज्य' की अवधारणा के बीच प्रमुख अंतर हैं?

एक अच्छे समाज में एक नैतिकता की आवाज होती है, जहाँ व्यक्तियों में नैतिकता की भावना होती है और वे सामाजिक-समर्थक तरीके से व्यवहार करते हैं। सामाजिक-समर्थक भावना या तो जन्मजात या नैतिकता की अर्जित भावना से उत्पन्न हो सकती है। नैतिकता की एक सहज भावना जो मानव होने के गुण से उत्पन्न होती है वह इस प्रकार पालन-पोषण और शिक्षा की भूमिका व्यक्ति के नैतिक गुणों को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समुदायवादी इस तथ्य पर जोर देते हैं कि नैतिकता के विचार को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है, जो उस वातावरण से आता है जिसमें एक व्यक्ति पनपता है। मनुष्यों की मान्यता, अनुमोदन तथा सम्मान महत्त्वपूर्ण रूप से जुड़ें हुये हैं, इस प्रकार समुदाय एक एजेंसी के रूप में कार्य करता है जो न केवल आश्रय देता है बल्कि एक मूल्य प्रणाली भी स्थापित करता है, न केवल मूल्यों को कैसे लागू किया जाता है, बल्कि मूल्यों को कैसे बढ़ावा दिया जाता है।

जैसा कि जॉन लॉक ने कहा है, मनुष्य एक तर्कसंगत प्राणी है, जो तार्किक रूप से एक निगमनात्मक तर्क को लागू कर सकता है और नैतिकता की भावना को निर्धारित कर सकता है, जिसे ईश्वर ने प्रदान किया है। लॉक ने नैतिकता पर तर्कवाद विचार की अनुभवजन्य समझ पर आधारित किया। उनका मानना है कि मानव मन एक संवेदी समझ है जो नैतिकता के विचार का निर्माण करती है। हम, मनुष्य के रूप में, संवेदी और आत्मकेंद्रित अनुभवों से जो कुछ भी ग्रहण करते हैं और अनुभव करते हैं, उसकी सरलीकृत धारणा से जटिल नैतिक प्रस्ताव का निर्माण करते हैं। लॉक ने तर्क और नैतिकता के बीच एक अंतर्संबंध बुना है। लॉक के अनुसार, प्रकृति की स्थिति पूर्व-राजनीतिक थी, लेकिन पूर्व-नैतिक नहीं थी। नैतिकता की भावना पहले से मौजूद थी; इस प्रकार, एक राजनीतिक राज्य में नैतिकता की एक बुनियादी अवधारणा होनी चाहिए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

नैतिकता को समझने में हस्तक्षेप का मुद्दा यह आकलन करता है कि क्या समाज नैतिकता को नैतिकता के रूप में मानता है, और व्यक्ति नैतिकता को किस रूप में मानता है। यदि कोई व्यक्ति राज्य के नियंत्रण से मुक्त होने का पात्र है, तो क्या वह उस सामाजिक दबाव से मुक्त होने के योग्य नहीं है जो सामाजिक नैतिकता की अवधारणा से उत्पन्न होती है। इस दुविधा की चर्चा जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपनी कृति ऑन लिबर्टी में की है। व्यक्ति के साथ समाज के व्यवहार को मजबूरी और नियंत्रण के माध्यम से समझा जा सकता है, या तो शारीरिक दंड के रूप में या नैतिक दबाव के रूप में जो राज्य दावा करता है। राज्य जिस नैतिकता का समर्थन करता है, वह विभिन्न वर्गों के लिए भिन्न हो सकती है।

लोकतंत्र में बहुसंख्यक संख्या में बहुमत की इच्छा से जबरदस्ती करने की शक्ति होती है। सार्वजनिक अस्वीकृति उन लोगों के अलगाव और निराशा की ओर ले जाती है जिनकी माँगों को आत्मसात नहीं किया गया है (टॉकविल, 1991)। हालाँकि, भेद जबरदस्ती के बल में निहित है, एक राज्य नैतिक रूप से जबरदस्ती हो सकता है लेकिन एक समुदाय आंतरिक नैतिक आवाज का समर्थन करता है जिसे डरने की नहीं बल्कि विकसित करने की आवश्यकता होती है। नैतिक पसंद व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मनुष्य की स्वतंत्र पसंद के साथ प्रतिध्वनित होती है। आंतरिक नैतिक चुनाव स्वयं से अलग नहीं है। यह किसी के अस्तित्व का एक हिस्सा है और किसी के अस्तित्व की जड़ों से पैदा होता है। यह किसी के नैतिक चरित्र को परिभाषित और आकार देता है। बाहरी नैतिक विकल्प समुदाय संचालित है और सामाजिक अभिविन्यास और 'अच्छे' और 'बुरे' के निर्माण से आत्मसात होता है। बाहरी नैतिक विकल्प किसी व्यक्ति पर नैतिक निर्माण की वकालत करने या अस्वीकार करने का दायित्व देता है। अंतिम कॉल व्यक्तिगत अभिनय के साथ है। समाज में चापलूसी करने, मनाने और निंदा करने की प्रवृत्ति होती है लेकिन यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह जिस अवधारणा पर जोर दिया जा रहा है उसका पालन करें।

हालाँकि, नैतिकता की जिम्मेदारी लेने वाले राज्य के मामले में, वैधता की मंजूरी के कारण उसके पास जबरदस्ती का बल है। राज्य की मंजूरी प्रकृति में बाध्यकारी नहीं हो सकती है। राज्य अन्य संस्थागत तंत्रों के माध्यम से जनता को समझाने और शिक्षित करने के लिए उपकरणों का उपयोग कर सकता है जो स्वभाव से जबरदस्ती नहीं हैं और लोगों से निष्ठा की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, अभिनेता के पास कानून का पालन करने वाले नागरिक होने के नाते राज्य का पालन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। राज्य के अंतिम सहारा को निष्ठा का आदेश देने के लिए बल द्वारा प्रेरित किया जा सकता था। एक अनुवर्ती प्रश्न जो प्रस्ताव से उत्पन्न होता है, वह यह है कि नैतिकता की आवाज को लागू करने वाली एजेंसी है? सद्गुण द्वारा नैतिकता की आवाज जबरदस्ती नहीं है लेकिन अगर निष्ठा का आदेश देना है तो आवाज को लागू करना जबरदस्ती हो सकता है। कमांड में प्राधिकार का बल हो सकता है जो राज्य को इससे जुड़े कानूनी और आर्थिक प्रतिबंधों के कारण मुखर बनाता है। यह नैतिकता नहीं है बल्कि इसका समर्थन करने वाली एजेंसी जबरदस्ती के रूप में सामने आती है।

समकालीन उदार लोकतांत्रिक व्यवस्था एक व्यक्ति के पास मौजूद स्थान को संचालित करने की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता प्रदान करती है। एक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार राज्य को चुनने और रहने की स्वतंत्रता है। उसके पास एक राज्य प्राधिकरण के आगे झुकने के लिए तर्क और नैतिकता की आवाज है जिसे वह सौंपा गया उसका वह महसूस करता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सामाजिक दबाव का पालन करना भी एक व्यक्ति की नैतिक समझ के सुविधाजनक बिंदु से उत्पन्न होता है। उसके कार्यों को सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक रूप से एक दायरे में रखा गया है क्योंकि वह समाज का एक हिस्सा है, एक राज्य है और कम से कम सीमित लोगों के प्रति निष्ठा रखता है। माता-पिता द्वारा अपने बच्चों की देखभाल करने के मामले में, निर्णय का नेतृत्व नैतिक बल द्वारा नहीं किया जाता है जिसे राज्य लागू करता है, बल्कि एक नैतिकता की आवाज से होता है जिसे समुदाय प्रचारित करता है। बुजुर्ग माता-पिता को उनके बच्चों द्वारा छोड़ दिया जाना नैतिक आवाज और व्यक्तिगत पसंद का सवाल है।

नैतिकता की आवाज की स्वैच्छिक प्रकृति स्वतंत्रता के विचार के साथ एक अच्छे समाज के मेल-मिलाप का मार्ग प्रशस्त करती है। यह विचार उदार राज्य और समाज का मूल सार होना चाहिए। सामाजिक संस्थाएँ एक अच्छे समाज और राज्य द्वारा प्रचारित अच्छे समाज के बीच अंतर को चिह्नित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। संस्थाएँ मूल्य-तटस्थ नहीं हैं, वे लोगों के एक विशेष समूह का अवतार हैं। प्रत्येक सामाजिक संस्था में कुछ गुण निहित होते हैं। उदाहरण के लिए, एक परिवार एक प्राथमिक सामाजिक संस्था होने के नाते एक मूल्य-आधारित इकाई का एक स्पष्ट उदाहरण है। एक प्रमुख समझ संस्था की स्वतंत्रता को नैतिकता के भागफल के साथ जोड़ती है जिसे वह आत्मसात करता है और भविष्यवाणी करता है। जिन संस्थाओं का राजनीतिकरण किया जाता है, वे राज्य द्वारा प्रचारित भलाई की धारणा की सेवा के लिए साधन हैं।

विचार-विमर्श का परिणाम सार्वजनिक नीति में प्रकट होता है। नीतियाँ लोगों की सामान्य भलाई को बढ़ावा देने में समाज की चिंताओं और राज्य के दृष्टिकोण को आवाज देती हैं। सार्वजनिक मंच पर नागरिकों की चिंताओं को आवाज देने के लिए नीतियों को नीति निर्माताओं की तर्कसंगत पसंद माना जाता है। इसे राजनीतिक संघर्ष को हल करने के लिए एक तर्कसंगत परिणाम के रूप में माना जाता है (जॉनसन, 1994)। विचार-विमर्श और लोकतंत्र साथ-साथ चलते हैं और राज्य के नैतिक विवेक को बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। नैतिक संवाद प्रतिभागी के मूल्यों को शामिल करते हैं और कार्रवाई के एक उचित पाठ्यक्रम को आकार देने के लिए एक तर्कसंगत और तार्किक प्रवचन का अनुमान लगाते हैं। पूरी प्रक्रिया मूल है और केवल प्रक्रियात्मक नहीं है। मूल्य स्थिर नहीं हैं, वे समय के आगमन के लिए पुनर्रचना और अनुकूलन कर रहे हैं। राज्य की कानून-व्यवस्था पर निर्णय के लिए एक साझा सहमति बनी है। आम सहमति नीतियों में बदल जाती है जो शासन का एक हिस्सा बनती है। नैतिक संवाद लोकतंत्र में मानवाधिकारों, लिंग अधिकारों, यौन उत्पीड़न और अन्य महत्त्वपूर्ण प्रवचनों के बारे में विचार-विमर्श से संबंधित हो सकते हैं। संवाद परिवार में प्रारंभिक स्तर पर होते हैं, और फिर समुदाय के स्तर पर होते हैं। कैसे एक समाज विभिन्न स्तरों पर मूल्यों के एक नए सिरे से और मजबूत करने वाले सेट पर फिर से बातचीत करने के लिए एक साथ आता है, यह समाज के खुलेपन को निर्धारित करता है। विचार-विमर्श एक श्रृंखला प्रतिक्रिया में होता है और मूल्यों की धारणा में बदलाव लाने की क्षमता रखता है। यह लाखों आबादी के छोटे समूहों में शुरू होता है। समूह एक परिवार, जाति, धर्म, सामान्य जातीयता या सामान्य भाषा के हो सकते हैं। इस प्रक्रिया को विभिन्न ऐसे समूहों को आपस में जोड़कर आगे बढ़ाया जाता है, जो साझा सार्वजनिक मंचों और थिंक टैंक में बदल जाते हैं। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर बैठकों के रूप में नेटवर्किंग द्वारा विचार-विमर्श की श्रृंखला एक व्यापक जाल में परिवर्तित हो जाती है। समकालीन परिदृश्य ने इंटरनेट ने सहायता की है क्योंकि दुनिया डिजिटल बुनियादी ढांचे से जुड़ी हुई है। दुनिया न केवल डिजिटल कनेक्ट है बल्कि चर्चाओं के एजेंडे डिजिटल रूप से क्यूरेट किए गए हैं। मीडिया न केवल

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

राय देने में बल्कि समाज के सभी वर्गों में आवाज खोजने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।

संवादों को व्यवस्थित और सटीक रूप से किसी विशेष परिवर्तन, मूल मूल्य या सामाजिक हस्तक्षेप पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए एक स्पष्ट पैटर्न या शुरुआत की आवश्यकता नहीं है, इसे केवल एक प्रवचन को ट्रिगर करने के लिए एक संवाद की आवश्यकता है। समकालीन दुनिया में महाद्वीपों में पर्यावरण जागरूकता में मूल्यों के बदलते अभिविन्यास का एक उदाहरण स्पष्ट है। पर्यावरण की चिंता मुख्यधारा के प्रवचन का हिस्सा नहीं थी। इसमें विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और समुदायों द्वारा उठाए गए अंतर्निहित मुद्दे और चिंताएँ थीं लेकिन पश्चिमी समाजों में इसे साझा मूल मूल्य नहीं माना जाता था। राचेल कार्सन द्वारा पर्यावरण पर प्रसिद्ध काम से एक राष्ट्रव्यापी मेगालॉग शुरू हुआ, जिसका नाम द साइलेंट स्प्रिंग था। इसके बारे में विभिन्न मंचों पर चर्चा की गई और नागरिकों द्वारा चिंता का एक प्रमुख कारण माना गया और इसे मानक एजेंडा में शामिल किया गया। पृथ्वी दिवस की घोषणा से, पृथ्वी ओवरशूट दिवस के अवलोकन से लेकर क्योटो प्रोटोकॉल और मॉन्ट्रियल कन्वेंशन जैसे पर्यावरण पर विभिन्न प्रोटोकॉल और सम्मेलनों हुए, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का पर्यावरणीय क्षरण और नियंत्रण देश के सभी देशों में एक अत्यंत चिंता का विषय बन गया है। देश अक्सर मानक निष्कर्ष पर नहीं आते हैं और किए जाने वाले उपायों पर साझा सहमति का पालन करने में मतभेद होते हैं। हालाँकि, मतभेद इस दृष्टिकोण से भिन्न नहीं हैं कि पर्यावरण संबंधी चिंताएँ एक साझा मूल मूल्य बन गई हैं जिन्हें नीति निर्माण में शामिल करने की आवश्यकता है। यह केवल विधायी निकाय नहीं हैं जो स्थापित मूल मूल्यों के मामले में संवाद का एक हिस्सा बनती हैं, बल्कि एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया के रूप में शुरू की जाती है जिसे सामाजिक क्षेत्र में पोषित किया जाता है। यह क्षेत्र राजनीतिक दायरे में आ सकता है, लेकिन निश्चित रूप से राज्य के राजनीतिक विमर्श पर इसका गहरा और गहरा प्रभाव पड़ता है।

कानून सामाजिक परिवर्तन को प्राप्त करने में उत्प्रेरक है। यह राजनीतिक प्रक्रियाओं का एक मुख्य परिणाम है। नैतिक संवाद राजनीतिक क्षेत्र में होते हैं, लेकिन परिपक्व नहीं होते हैं और उसी में आश्रय नहीं लेते हैं। यह समाज ही है जो संवाद और कानून का पोषण करता है जो परिणाम प्राप्त करने में मदद करता है। भूमि का कानून सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्व करता है। हालाँकि, नैतिकता की प्रकृति एक अच्छे समाज को परिभाषित करती है। कानून नैतिक संस्कृति के अनुसार होना आवश्यक है। कानून के अनुसार नहीं तो एक सत्तावादी राज्य के लिए राज्य की प्रकृति, या सबसे खराब रूप में एक अधिनायकवादी राज्य भी हो सकता है। सामाजिक परिवर्तन सुनिश्चित करने और राज्य की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कानून पहला कदम है। कानून को भी लागू करने के लिए नैतिक आवाज की इच्छा और शक्ति की आवश्यकता होती है। यह अकेले जबरदस्ती नहीं है जो एक अनैतिक कार्य को रोक सकता है। यह आंतरिक नैतिक विवेक है जो किसी व्यक्ति की कार्रवाई को निर्देशित करने में एक मार्गदर्शक सितारा का कार्य करता है। निषेध नैतिक व्यवहार को नियंत्रित कर सकता है लेकिन व्यक्तियों में नैतिक शिष्टाचार को आत्मसात नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, नौकरशाही व्यवस्था में भ्रष्टाचार को प्रतिबंधित किया जा सकता है, और इस प्रकार इसे नियंत्रित किया जा सकता है लेकिन यह आंतरिक विवेक या नैतिकता की आवाज है जो समाज को भ्रष्टाचार मुक्त बनाने में किसी व्यक्ति के कार्यों का मार्गदर्शन करेगी। भय आदेश दे सकता है, नैतिकता की माँग नहीं कर सकता। यह नैतिकता की आवाज की शक्ति है जिसे भूमि के कानून का पालन करने में भी गिना जाना चाहिए।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.4 निष्कर्ष

राजनीतिक और नैतिक, हालाँकि मौलिक रूप से भिन्न हैं, लेकिन असंख्य तरीकों से इसमें परस्पर संबंध हैं। दोनों को एक ही समझने के लिए भ्रमित नहीं किया जा सकता है, लेकिन दोनों को अलग-अलग समझने के लिए इन्हें विभाजित भी नहीं किया जा सकता है। एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक उदार व्यवस्था कानून की पवित्रता से संचालित होती है, राज्य तंत्र द्वारा कानून को मजबूत किया जाता है तथा नैतिकता की साझा समझ से राजनीतिक शासन करता है। राज्य राजनीति का अंग है, राज्य के कार्यों का एक नैतिक आयाम होता है क्योंकि वे एक साझा समझ और मूल्यों की व्यापक सहमति पर भी काम करते हैं। समकालीन राजनीतिक समझ सामाजिक सहमति के रूप में बड़े पैमाने पर लिखी गई नैतिकता की बहाली है। राज्य बनाम समुदाय के विचार को अब राष्ट्रों की अन्योन्याश्रयता के कारण एक राजनीतिक समुदाय के रूप में देखा जाता है, जिसने शासन की अधिक समग्र, व्यापक और एकजुट समझ के लिए साझा समझ के दायरे को बढ़ा दिया है। शासन के विचार में सामाजिक शासन का एक प्रतिमान भी है। राज्य के विभिन्न कार्यों को अलग-थलग करने के बजाय एक-दूसरे के साथ साँठ-गाँठ में समझा जाना चाहिए। नैतिक संवादों के परिणाम परिपक्व हो गए हैं और साझा मूल्यों के विचार ने भी अपने दृष्टिकोण में अधिक निर्णायक होने के लिए खुद को फिर से स्थापित किया है। राज्य की पवित्रता लोगों से निकलती है क्योंकि यह लोग ही हैं जो राज्य को शासन करने के लिए अधिकृत करते हैं। लोग स्वयं एक नैतिक आवाज द्वारा निर्देशित होते हैं और इस प्रकार नैतिक विचार-विमर्श की शक्ति सरकार के स्तर पर भी दिखाई देती है। जो राजनीतिक है, उसको कभी भी विभाजित समझ नहीं जाना चाहिए क्योंकि राजनीति अपने आप में सामाजिक, आर्थिक और नैतिक गुणों का एक योग है जो राज्य के शासन का मार्गदर्शन करती है।

DDCE/COL/SOL/University of Delhi

1.5 अभ्यास प्रश्न

प्र.1 राजनीति क्या है? हम इसका अध्ययन क्यों करते हैं?

प्र.2 राजनीतिक सिद्धांत के विभिन्न अर्थों को संक्षेप में बताएँ?

प्र.3 राजनीतिक सिद्धांत तथा सामाजिक सिद्धांत में अंतर कीजिए क्या है और इसकी प्रासंगिकता क्या है?

1.6 संदर्भ

- अरस्तू, 'राजनीति', रिचर्ड मैककॉन (संस्करण) में। (2001)। अरस्तू के मूल कार्य। न्यूयॉर्क : द मॉडर्न लाइब्रेरी।
- बर्लिन, आई. (2000)। मानव जाति का उचित अध्ययन : निबंधों का संकलन। न्यूयॉर्क: फरार स्ट्रॉस और गिरौक्स।
- ब्रूक्स, डी. और क्रिस्टल विलियम (1997)। क्या बीमारी है संरक्षण, वॉल स्ट्रीट जर्नल, सितंबर 15, 1997।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- कारपेंटे, डब्ल्यू. (1936)। राजनीति: हेरोल्ड डी. लासवेल द्वारा हू गेट्स व्हाट, व्हेन, हाउ, बाय। न्यूयॉर्क : व्हिटलेसी हाउस।
- क्रिक, बी. (1962)। राजनीति के बचाव में। लंदन: वीडेनफेल्ड और निकोलसन।
- डी टोकेविल, ए. (1991)। डेमोक्रेसी इन अमेरिका, खंड 2 (हेनरी रीव, ट्रांस.) । न्यूयॉर्क।
- एट्ज़ियोनी, ए. (1996)। द गोल्डन रूल, न्यूयॉर्क।
- एट्ज़ियोनी, ए. (2003)। राजनीतिक क्या है? डेर बेग्रिफ डेस पोलितिसन (सोज़ियाल वेल्ट) में। बाडेन- बैडेन: नोमोस, पीपी 89-99।
- गेलनर, ई. (1983)। राष्ट्र और राष्ट्रवाद। ऑक्सफोर्ड: बेसिल ब्लैकवेल.
- नाइट, जे. और जेम्स जॉनसन (1994)। एकत्रीकरण और विचार-विमर्श। लोकतांत्रिक वैधता की संभावना पर। राजनीतिक सिद्धांत, 22(2), 277-296।
- लोके, जे. (1988)। सरकार के दो ग्रंथ। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- मिल, जे. (2011)। स्वतंत्रता और अन्य निबंधों पर। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-2

राजनीतिक सिद्धांत के दृष्टिकोण: मानक, ऐतिहासिक और अनुभवजन्य

राजिन्दर कुमार

संरचना

2.1 परिचय

2.2 राजनीतिक सिद्धान्त की ज़रूरत क्यों होती है?

2.3 राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के उपागम

2.3.1 ऐतिहासिक उपागम (Historical Approach)

2.3.2 संस्थागत उपागम (Institutional Approach)

2.3.3 आदर्शी उपागम (Normative Approach)

2.3.4 आनुभविक उपागम (Empirical Approach)

2.4 समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त के उपागम

2.5 वैकल्पिक प्रश्न

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.7 सन्दर्भ-सूची

DDCE/COL/SOL/University of Delhi

2.1 परिचय

हमारे बीच जब भी राजनीति शब्द का प्रयोग होता है या जब भी राजनीति के बारे में बात की जाती है, तो उसमें बहुत नकारात्मकता झलकती है। इसलिए उदाहरणों के रूप में हम अक्सर लोगों से सुनते हैं कि राजनीति बेहद गंदी चीज है, ऑफिस में बहुत राजनीति (Politics) होती है, मुझे राजनीति पसंद नहीं है आदि। लेकिन जब भी इस प्रकार की बातों में राजनीति शब्द का प्रयोग होता है तो हम उसका प्रयोग उसके सही अर्थों में नहीं करते। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि हमें राजनीति का सही अर्थ मालूम नहीं है या इस शब्द का प्रयोग हमारे समाज में अब काफी आम हो गया है, वह भी बिना इसका अर्थ जानते हुए। ऐसा निरंतर होते रहने से नुकसान यह होगा कि राजनीति के बारे में ना तो हमारी सही समझ कभी बन पाएगी और ना ही हम किसी और को यह समझा पाएँगे कि राजनीति होती है? इसलिए राजनीति, राजनीतिक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

जैसे शब्दों का सही ज्ञान होना ज़रूरी है। साथ ही साथ इस अध्याय का उद्देश्य राजनीति के सैद्धांतिक अध्ययन पर बल देना भी है। क्योंकि जब तक राजनीति का सिद्धांतीकरण नहीं होगा, तब तक राजनीति का सही अर्थ सामने नहीं आएगा। यह काम भी राजनीतिक सिद्धान्त के विषय-क्षेत्र का है। जैसा कि डेविड हेल्ड कहते हैं कि राजनीतिक सिद्धांत का महत्त्व इस बात से प्रकट होता है कि बिना किसी व्यवस्थागत अध्ययन के राजनीति, कुछ स्वार्थी और लोभी राजनीतिक नेताओं का हाथ का खिलौना बनकर मात्र रह जाएगी, जो इसे शक्ति प्राप्त करने के यंत्र के अलावा और कुछ नहीं समझते। इस बात से ही राजनीतिक सिद्धांत के स्पष्ट अध्ययन को बल मिलता है। इसलिए यह अध्याय राजनीतिक सिद्धांत की समझ और उसके अध्ययन के विभिन्न उपागमों की व्यवस्थित व्याख्या करने के लिए प्रतिबद्ध है।

2.2 राजनीतिक सिद्धांत की जरूरत क्यों होती है ?

इस प्रश्न को सही से समझने के लिए सबसे पहले हमें यह जानना पड़ेगा कि राजनीति, राजनीतिक क्या है? राजनीति और राजनीतिक शब्द ग्रीक भाषा के प्राचीन शब्द Polis (जिसका अर्थ होता है नगर-राज्य) से आया है। इसका संबंध लोगों के उस समूह या संगठन से हैं, जो अपने पूरे समुदाय के भले के लिए निर्णय लेने का काम करता है। प्राचीन समय से राजनीति सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई है। जहाँ पर संस्थाओं के द्वारा समुदाय के भले के लिए निर्णय लेने का कार्य होता था। राजीव भार्गव की माने तो यह समाज के अंदर समाज के बारे में निर्णय निर्माण का क्षेत्र है। वहीं हन्ना एरेंट का मानना है, कि राजनीति समुदाय के बीच या लोगों के बीच मतभेदों को बातचीत या शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाने के लिए इस्तेमाल की जाती है, जिसमें किसी भी प्रकार के बल या हिंसा का इस्तेमाल नहीं होता। यह समाज के भले के लिए होती है। अर्थात्, राजनीति एक सामाजिक गतिविधि है, जो समाज में सुख-शान्ति बनाए रखने के लिए की जाती है।

जिस प्रकार राजनीति या राजनीतिक शब्द का अर्थ स्पष्ट किया गया है, वैसे ही सिद्धान्त शब्द का अर्थ जानने की आवश्यकता है, क्योंकि राजनीतिक सिद्धान्त राजनीति और सिद्धान्त शब्द के मेल से ही बना है।

सिद्धान्त (Theory) शब्द ग्रीक भाषा के थ्योरिया शब्द से आया जिसका अर्थ होता है, हमारे आसपास घटित हो रही घटनाओं को समझने की क्रिया से। इसलिए सिद्धांत को व्यवस्थित ज्ञान के लिए इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि हम रोजमर्रा की जिंदगी में बहुत सी चीजों को समझते हैं या उनका अनुमान लगाते हैं, उनके बारे में विचार बनाते हैं। इसलिए सिद्धान्त को व्यवस्थित ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है।

इस प्रकार राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक घटनाओं का व्यवस्थित ज्ञान है (OP Gaba: 2009)। राजनीतिक सिद्धांत समाज की राजनीतिक घटनाओं तथा प्रक्रियाओं का वर्णन, व्याख्या, विश्लेषण और उनकी कमियों को दूर करने का उपाय करता है। जॉर्ज कैटलिन (George Catlin) ने राजनीतिक सिद्धांत को दो भागों में बाँटा है, उनका मानना है कि राजनीतिक सिद्धांत, राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक दर्शन का मेल है। जहाँ राजनीतिक विज्ञान का काम राजनीतिक जीवन के तथ्यों की जाँच करना है। वहीं राजनीतिक दर्शन का संबंध राजनीतिक जीवन के मूल्यों से जुड़ा हुआ है। यानी हमारे लिए क्या सही है? या 'क्या होना चाहिए' ऐसे नैतिक प्रश्नों पर विचार करते हैं। आरंभ से ही राजनीतिक सिद्धांत उन नियमों की खोज में लगे हुए हैं, जिनके आधार पर व्यक्ति एक ऐसे राजनीतिक समुदाय का विकास कर सके, जिसमें शासक और शासित दोनों सामान्य हित की भावना से प्रेरित हों। आइए राजनीतिक सिद्धान्त की परिभाषा को कुछ और

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

राजनीतिक सिद्धांतकारों से समझने की कोशिश करते हैं, जैसे एंड्रू हैकर (Andrew Hacker) देखते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त का मुख्य लक्ष्य वैचारिक समझ और स्पष्टता को बढ़ाना है, जबकि जॉन प्लामेनाट्ज़ (John Plamenatz) का मानना है कि यह सरकार के विशेष उद्देश्यों के व्यस्थित चिंतन है (Andrew Vincent: 2004, 23)। एलन गिवर्थ (Alan Gewirth) इसे शक्ति का नैतिक मूल्यांकन समझते हैं। वहीं डेविड रफाएल (David Raphael) ने सिद्धान्त को विचारों के स्पष्टीकरण और विश्वास के आलोचनात्मक मूल्यांकन के रूप में परिभाषित किया है और डेविड मिलर (David Miller) ने इसे सरकार की प्रकृति और उद्देश्यों पर व्यवस्थित प्रतिविम्ब के रूप में परिभाषित किया है (Andrew Vincent: 2004, 25)। इन परिभाषाओं में कहीं-न-कहीं राजनीतिक सिद्धान्तों का संबंध सरकार या राज्य से है, जो यह भी दर्शाता है कि राजनीतिक सिद्धांतों में ज़्यादा महत्त्व, सिद्धांतों पर न होकर राजनीति पर है, जो ग्रीक भाषा के Polis (शाब्दिक अर्थ) यानी नगर-राज्य से आया है। लेकिन राजनीतिक सिद्धांत का सही आवश्यकता तब पता चलती है, जब इसे जॉर्ज कैटलिन की परिभाषा के अनुसार देखते हैं। चूँकि राजनीतिक सिद्धांत में विज्ञान और दर्शन दोनो का समावेश है, इसलिएका महत्त्व ही राजनीतिक सिद्धांत की आवश्यकता पर जोर देता है। हमें निम्नलिखित कारणों से राजनीतिक सिद्धांत की आवश्यकता है। पहला, यह सामाजिक जीवन पर नियंत्रण रखती है, अर्थात् समाज में उत्पन्न संकटों की समझ या उसके कारण की समझ हमारे सामने लाती है, जिससे समाज में हिंसा होने की स्थिति से बचा जा सकता है। दूसरा, इसका कार्य सामाजिक आलोचना और पुनर्निर्माण का भी है, क्योंकि राजनीतिक दर्शन सही-गलत का निर्धारण करने में उपयोगी है इससे सही समाज का निर्माण होता है। यह समाज में मौजूद बुराइयों की खोज करती है और उनका समाधान करती है, एक प्रकार से यह सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना की तरह काम करते हैं। तीसरा, इसका काम विचारों का स्पष्टीकरण का भी है, यह ऐसा इसलिए करते हैं ताकि ज्ञान का शै से विकास ही सके। सरल शब्दों में देखें तो राजनीतिक सिद्धान्त का कार्य (1) वर्णन करना, (2) आलोचना करना और (3) पुनर्निर्माण का है (O P Gaba: 2009)।

राजनीतिक सिद्धान्त के महत्त्व के कारण इसके अध्ययन को बारीकी से करने की आवश्यकता जान पड़ती है। क्योंकि यही तरीका है, जो राजनीतिक सिद्धान्त के सैद्धान्तिक होना का प्रमाण देगा।

2.3 राजनीतिक सिद्धांत के अध्यूयन के उपागम

वैसे तो राजनीति एक बेहद पुराना विषय है, लेकिन इसका सैद्धान्तिक तरीके से अध्ययन का काम 19वीं और 20वीं शताब्दी के साथ शुरू हुआ। तब से इसका क्रमबद्ध अध्ययन शुरू हुआ था और विभिन्न राजनीतिक चिंतकों और उनके विचारों का सैद्धांतीकरण शुरू हुआ था। इस दौरान में राजनीति को विशेष अनुशासन बनाने पर ज़ोर दिया गया था। विशेषकर यूरोपीय देशों व उत्तरी अमेरिका में जहाँ राज्य के अध्ययन को ही राजनीति का अध्ययन समझा जाता था। यहाँ कई सारे शैक्षणिक संस्थानों राजनीति को एक विषय के रूप में विकसित किए जाने पर जोर दिया जाने लगा और राजनीति पर ज्यादा-से-ज्यादा अध्ययन किया जाने लगा यही से हर राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के लिए उपागम का विकास भी हुआ इसलिए राजनीतिक सिद्धांतों पर यूरो केंद्र वाद का आरोप लगता रहता है, इस सब के परे यदि राजनीतिक सिद्धांत को समझना है या राजनीतिक सिद्धांत के सही से अध्ययन किया जाना है तो इसके विभिन्न उपागम जानना बहुत आवश्यक है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के लिए प्रयोग किए जाने वाले उपागमों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है। पहले भाग में आते हैं पारंपरिक राजनीतिक उपागम, जिसमें मुख्य है ऐतिहासिक उपागम (राजनीति के ऐतिहासिक अध्ययन पर बल देता है) और संस्थागत उपागम जो राज्य के अध्ययन पर जोर देता है। और आदर्शी उपागम (निर्देशात्मक उपागम है, जो नैतिक मूल्यों पर बल देता है)। इन पारंपरिक उपागमों में इतिहास, वैधानिकता और मूल्यों की प्रधानता होती है। हालाँकि इस उपागम को समकालीन राजनीतिक सिद्धांत के रूप में भी समझा जाने लगा है, जिसमें विज्ञान तथ्यों और नैतिक मूल्यों और मन को समायोजन है। पारंपरिक उपागम विशेषतः एक आदर्श राज्य, या सरकार का लक्ष्य रखते हैं। दूसरा भाग आधुनिक राजनीतिक उपागम का है, जिसमें आनुभविक-वैज्ञानिक उपागम आता है। इस प्रकार के उपागम में तथ्यों और वैज्ञानिक प्रयोग की प्रधानता है। यह वर्णनात्मक प्रवृत्ति रखते हैं। यह उपागम अनुभव-अवलोकन, परिकल्पना का परीक्षण, और वैज्ञानिक विश्लेषण करने के लिए उपयुक्त है।

यह दोनों (पारंपरिक और आधुनिक) उपागम राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के लिए बेहद जरूरी हैं, क्योंकि राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक दर्शन से मिलकर बनता है और यह दोनों उपागम इन्हीं दोनों की प्रधानता करते हैं। जहाँ पारंपरिक राजनीतिक सिद्धांत का उद्देश्य एक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना करना है, वहीं आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत का आधार व्यक्तिवाद है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसमें यह बदलाव आया कि आनुभविक-वैज्ञानिक, अर्थात् आधुनिक उपागम का राजनीतिक सिद्धान्त पर वर्चस्व से हो गया और उसके बाद से तथ्यों और विज्ञान पर अधिक बल दिया जाने लगा। राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के निम्नलिखित उपागम हैं।

1. ऐतिहासिक उपागम (Historical Approach)

राजनीतिक सिद्धांत के उपागम को समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि इतिहास का राजनीतिक सिद्धांत में क्या स्थान बनता है? इसकी क्या समझ बनती है?

जैसा कि एंड्रू विंसेंट(2004) वर्णन करते हैं कि हमें ग्रीक समय से लेकर वर्तमान समय तक के सिद्धांतकारों के सिद्धांत के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है। लेकिन यह आवश्यकता क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर भी जानने की आवश्यकता है। इस उपागम की पैरवी करने वालों द्वारा माना जाता है कि राजनीतिक घटनाओं और प्रक्रियाओं को और बेहतर ढंग से समझने के लिए उनकी व्याख्या या विश्लेषण करने के लिए कुछ ऐतिहासिक कारकों जैसे समय, स्थान और परिस्थिति का इस्तेमाल किया जा सकता है। आसान शब्दों में कहें तो इस उपागम में भूतकाल या अतीत (Past) से वर्तमान (Present) को परिभाषित करने की कोशिश की जाती है यहाँ इतिहास अपनी व्यापक समझ में अतीत के विश्वासों और व्यवहार से संबंधित है। जहाँ तक राजनीतिक सिद्धांत में इतिहास की बात है, तो राजनीतिक सिद्धांत का इतिहास एक माध्यम है, जिसके द्वारा शास्त्रीय आदर्श सिद्धांत को और संस्थागत सिद्धान्त को पाठकों तक पहुँचाया जा रहा है (Andrew Vincent: 2004, 38)। विंसेंट मानते हैं कि 1950 के दशक में राजनीतिक विज्ञान, राजनीतिक सिद्धांत के इतिहास से अलग था और यह विभाजन ही राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक दर्शन का विभाजन था। डिलथे (Dilthey), कोलिंगवुड (Collingwood), क्रॉस (Croce) के काम में इतिहास को विचारों के इतिहास (History of Thoughts) के रूप में देखा गया है।

सबसे पहले इस उपागम रॉबर्ट ब्लैकी (Robert Blackey) के दो वॉल्यूम *A History of Political Literature*

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

from the Earliest Times (हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल लिटरेचर फ्रॉम द अर्लीस्ट टाइम) 1855 से आया (Andrew Vincent: 2004, 40)। यहाँ ऐतिहासिक अध्ययन पर ज़ोर दिया जाता है क्योंकि अतीत से वर्तमान में संभावित राजनीतिक विकास का मार्ग खुल सके। क्योंकि यह प्राचीन राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के ऐतिहासिक अध्ययन पर जोर देता है। यह ऐतिहासिक राजनीतिक घटनाओं का वर्णन करता है। आसान शब्दों में यह किसी भी राजनीतिक स्थिति के विश्लेषण के लिए सभी राजनीतिक वास्तविकताओं का ऐतिहासिक अध्ययन है। मैकियावेली (Machiavelli), सेबाइन (Sabine), डंनिंग (Dunning) इन सभी का मानना था कि राजनीति और इतिहास आपस में जुड़ी हुई हैं, इसलिए राजनीति के अध्ययन के लिए एक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य हमेशा होना चाहिए। सेवाइन का मानना था कि राजनीति के अध्ययन में उन सभी विषयों को भी जोड़ा जाना चाहिए, जिनका लेखा-जोखा विभिन्न राजनीतिक चिंतकों ने प्लेटो के समय से अब तक किया है। यह उपागम इस बात पर जोर देता है कि किसी भी चिंतक के राजनीतिक विचार और उसकी राजनीतिक सोच या राजनीति की समझ उसके आसपास के वातावरण से बनती है। यह उपागम मानता है कि हमें ग्रीक समय से लेकर आज के समय तक के सिद्धांतकारों के सिद्धांत के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है तभी हमें उनके विचारों जेनियलॉजी का पता चलेगा इस प्रकार हिस्ट्री यानी इतिहास एक व्यापक समझ में अतीत विश्वासों और व्यवहार की समझ से संबंधित है।

जैसाकि एंड्रू विंसेंट अपनी रचना *Nature of Political Theory (2004)* में वर्णन करते हैं इस उपागम के विकास को दो लहरों में समझ सकते हैं, इसकी पहली लहर 1950 और 1960 के दशक के बीच में आई जिसमें मुख्य रूप से लियो स्ट्रॉस (Leo Strauss) का योगदान माना जाता है जो वह मानते थे कि ऐतिहासिक राजनीतिक सिद्धांत शास्त्रीय सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों पर आधारित हैं। यानी इतिहास और दर्शन (Philosophy) कभी अलग नही किए जा सकते हैं। इसलिए इनका मानना था कि ग्रंथ (Text) अपने पाठकों को नैतिक रूप से प्रभावित करता है। इस लहर में स्ट्रॉस और हन्ना एरेंट (Hannah Arendt) ने राजनीतिक दर्शन की परंपरा को आलोचनात्मक और नैतिक महत्त्व देने की कोशिश की है।

दूसरी लहर 1970 के दशक से 1990 के दशक तक चली जिस में मुख्यतः क्विन्टन स्किनर (Quinten Skinner) का योगदान रहा, जिन्होंने लेखक के इरादे (Intention) को जानने पर जोर दिया उनका मानना है कि अगर वैचारिक निर्माण और परिवर्तन की प्रक्रिया को जानना है तो बहुत सक्रिय ऐतिहासिक पूछताछ करनी होगी, ताकि उसके संदर्भ और वह किसके लिए है यानी उनके दर्शक (Audience) कौन है? इस बारे में पता चल सके। यहाँ देखने योग्य यह बात है कि स्किनर और स्ट्रॉस दोनों ही लेखक के आधिकारिक इरादे को महत्त्व देते हैं। लेकिन दोनों में एक अंतर यह है कि जहाँ स्किनर संदर्भ के आगे नहीं जाते वही स्ट्रॉस मानते थे कि संदर्भ और इरादा खुद नैतिक सार्वभौमिकता का स्रोत हैं (Andrew Vincent: 2004, 46)। प्रारंभ में इतिहास को नागरिक शिक्षा के रूप में देखा जाता था, जिसके द्वारा लोगों में राष्ट्रीय चेतना और जागरूकता जगाई जाती थी, यानी यह राष्ट्रीय व्याख्यान के रूप में था लेकिन राजनीतिक सिद्धांत में आने पर इसका मुख्य ध्यान ग्रंथ, उसके संदर्भ और लेखक की आधिकारिक मंशा या इरादे पर हो गया। इसका मुख्य तर्क यह रहा कि अतीत से नई समस्याओं के समाधान निकाले जा सकते हैं, यह प्राकल्पना और वैचारिक पहेलियों के परीक्षण के लिए कारगर साधन है और मानव मुक्ति या कल्याण का ऐतिहासिक रचनावली है। अतः इस उपागम का मुख्य आधार चिंतकों और सिद्धांतकारों की रचना के समय के वातावरण संदर्भ, और उसकी मंशा या इरादा समझने की है ताकि उनकी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

सही समझ स्थापित की जा सके। इसलिए 1960 में पीटर लासलेट, जॉन डन और क्विन्टन स्किनर सभी यह दावा करने लगे थे की ऐतिहासिक संदर्भ ही किसी राजनीतिक सिद्धांत के विकास को आकार देता है।

2. संस्थागत उपागम (Institutional Approach)

यह भी परंपरागत उपागमों में से एक है। इस उपागम का विकास मुख्य रूप से राजनीति के अध्ययन के विकास के साथ जुड़ा हुआ है, क्योंकि जैसे-जैसे जर्मनी के अलावा अन्य यूरोपीय देशों में और उत्तर अमेरिका में राजनीतिक के अध्ययन का विकास एक अनुशासन के रूप में हुआ। वैसे-वैसे संस्थागत उपागम का भी विकास होता गया। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रारंभ से ही संस्थाओं के अध्ययन का सीधा संबंध राज्य के अध्ययन से जुड़ा हुआ था। संस्थाओं को राज्य के रूप में ही देखा गया। इसलिए इसको राज्य का सिद्धांत भी कहा जाता है। राज्य के सिद्धांत का मुख्य रूप से उद्गम हमें जर्मनी में देखने को मिलता है, राज्य राजनीति का मुख्य केंद्र-बिन्दु रहा, खासतौर पर राष्ट्रवादी विचारधारा के चरम पर होने के दौर में। इसलिए इसे जर्मन विचारधारा भी कहा गया। बाद में यह जर्मन विचारधारा अन्य देशों में भी विकसित होने लगी। चूँकि उस दौर में राजनीतिक अध्ययन या राजनीति एक अनुशासन के रूप में विकसित हो रही थी यह यूरोप के अन्य देशों में भी विकसित हुई और उत्तर अमेरिका में विकसित हुई यहाँ पर आरंभ से ही राजनीति को राज्य के अध्ययन के रूप में देखा गया।

यह उपागम राजनीतिक सिद्धांत के कार्य की पहचान राज्य के अर्थ और उसके कार्यों को अभिव्यक्त करने के तौर पर करता है, जिसमें राज्य का दार्शनिक विचार और संवैधानिक वैधानिक कार्य दोनों शामिल हैं (Andrew Vincent: 2004, 28)। इस उपागम का उद्गम हीगेल (Hegel) और फ़िशे (Fische) के कार्यों में देखा जा सकता है। जिनका मानना है कि अगर राजनीति को जानना है, तो राज्य को जानो, राज्य को जानने के लिए उसके भीतरी आदर्शों को भी जानना होगा (Andrew Vincent: 2004, 28)। विंसेंट मानते हैं कि इस उपागम का विकास मुख्यतः जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी अमेरिका में इसलिए हुआ क्योंकि वहाँ पर संवैधानिक अध्ययन को बढ़ावा दिया गया। जो राजनीतिक संस्थाओं से सरोकार रखता था। उस दौर में राजनीतिक सिद्धांत बहुत सारे अन्य परिपेक्ष्य से जुड़ा हुआ था। इस उपागम का केंद्र बिंदु मुख्यता राज्य है यह राज्य के ऐतिहासिक, वैधानिक व दार्शनिक आयाम के रूप में देखा जा सकता है। बहुत सारे विचारकों जैसे एलटी हॉबहाउस (LT Hobhouse), मैक्स वेबर (Max Weber), लीओन डुगित (Leon Duguit), एमिली दुर्खेइम (Emile Durkheim)और आर एम (RM MacIver) राज्य के बारे में लिख रहे थे इसलिए 1870 के दशक से 1920 के दशक में राज्य परिपेक्ष बहुत ज्यादा प्रभावशाली था। जॉन वर्गिस (John Burgess), चार्ल्स मरियम (Charles Merrium), वुड्रो विल्सन (Woodrow Wilson) और रिटर्निंग इस राज्य उपागम के मुख्य मनीषा रहे। ब्लून्तश्चली (Bluntschli) भी राज्य के सिद्धांत (Theory of State) की ही बात करते हैं।

यहाँ यह जानना बहुत जरूरी हो जाता है कि इस उपागम में राज्य पर इतना ध्यान क्यों दिया गया? इसका मुख्य कारण राष्ट्रवाद में वृद्धि होना था। क्योंकि 19वीं-20वीं सदी में सभी का ध्यान राज्य के विचार पर था। और उस दौरान यूरोप में राज्य निर्माण चल रहा था। इन सभी देशों में अपने अपने राज्य को मजबूती देने का कार्य चल रहा था इसलिए इसके अध्ययन को एक अनुशासन के रूप में विकसित करने की कोशिश हो रही थी। उत्तरी अमेरिका, ब्रिटेन में राजनीति के अध्ययन के लिए राज्य पर ही ध्यान था। ऐसा इसलिए, क्योंकि यहाँ पर राज्य का संबंध सीधे-सीधे राजनीति के

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अनुशासन से जुड़ा हुआ था। शुरुआत से ही यहाँ पर राजनीतिक अध्ययन की मुख्य क्षेत्र राज्य है। क्योंकि इनका मानना था कि राजनीति ग्रीक भाषा के शब्द Polis से आया जिसका मतलब ही नगर-राज्य (City-State) या मात्र राज्य है। अरस्तु (Aristotle) ने राजनीति विषय का विकास तब ही किया था, जब वह राज्य के विज्ञान पर काम कर रहे थे (Andrew Vincent: 2004, 33)।

यह जानने के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि राज्य का जो सिद्धांत है वह एक जर्मन विचारधारा थी, जो यूरोप के बाकी देशों और उत्तर अमेरिका में समय के साथ-साथ फैलती गई। लेकिन जैसा कि एंड्रू विंसेंट वर्णन करते हैं कि 1950 के दशक से इस दार्शनिक आदर्शवाद में गिरावट आने लगी खासतौर से यूरोप (जर्मनी को छोड़कर) और अमेरिका के देशों में ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि विश्व युद्ध के कारण अन्य सभी देश जर्मन विचारधारा पर संशय व्यक्त करने लगे थे। उत्तरी अमेरिका में बड़ा परिवर्तन हुआ, जहाँ राजनीति अध्ययन क्षेत्र में प्रत्यक्षवादी परिवर्तन (Positivist Shift) आया जिसमें उन विषय-वस्तु को ही महत्त्व दिया गया, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से महसूस किया जा सकता था या तो देखा जा सकता था। राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में राजनीतिक विज्ञान को अधिक महत्त्व दिया और राजनीतिक अध्ययन के लिए आनुभविक पद्धति की ओर अग्रसर होने लगे। खासतौर शिकागो यूनिवर्सिटी में राजनीतिक को और वैज्ञानिक बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा था। अब आदर्शी और आनुभविक पद्धतियाँ अलग हो गई थी, यानी क्या "है" (is) और क्या होना "चाहिए" (ought) अलग होने लगे (Andrew Vincent: 2004, 35)। ग्रैहम वलास (Graham Wallas), जॉर्ज सोरेल (George Sorel), गुस्ताव ले बॉन (Gustav le Bon) इन सभी ने राज्य और नागरिकों की आदर्शी तार्किकता को कमजोर किया है, क्योंकि उन्होंने अपना ध्यान मुख्य रूप से व्यवहार और औपचारिक राजनीति पर लगा दिया (Andrew Vincent: 2004, 37)।

राजनीतिक दर्शन के समाप्त होने के साथ-साथ इस उपागम में भी रुचि घट गई थी। पर 1980 और 90 के दशक में आदर्शी उपागम के पुनर्जीवित होने के साथ-साथ यह भी नवसंस्थावाद के रूप में पुनः जीवित हुआ। खासतौर से 1980 के दशक में जब संस्थाओं के आकार के अध्ययन किया जाने लगा।

3. आदर्शी उपागम (Normative Approach)

जैसा कि जॉर्ज कैटलिन मानते हैं राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक दर्शन दोनों से मिलकर बना है। यह आदर्शी उपागम राजनीतिक दर्शन का भाग है इसलिए यह दार्शनिक प्रकृति का है। यह उपागम निर्देशात्मक प्रवृत्ति का है, जिसका संबंध मूल्यों, नैतिक मानकों से है। यह बताता है कि मानव को सब की भलाई के लिए या मानवीय जीवन की भलाई के लिए क्या करना चाहिए? यह हमें निर्देशित करता है कि "कैसे रहना चाहिए", क्योंकि इसके अनुसार समाज के कुछ सामान्य लक्ष्य और उद्देश होते हैं (Andrew Vincent, 2004: 21)।

लियो स्ट्रॉस (Leo Strauss), माइकल ओकशॉट (Micheal Oackshot), हन्ना एरेंट (Hannah Arendt), और फ्रेडरिक हैयक (Fredrick Hayek) अपने आप को इस परंपरा का मानते हैं (Andrew Vincent: 2004, 21)। दर्शन विज्ञान से अलग होता है, जहाँ विज्ञान किसी भी राजनीतिक घटना का वर्णन करता है, वहीं दर्शन उसका औचित्य देने की कोशिश करता है ताकि एक तार्किक समझ बन सके कि उसको माना जाए या नहीं। राजनीतिक दर्शन का कार्य है राजनीतिक मान्यताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना भी है। यह किसी राजनीतिक प्रवचन (Political

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

Discourse) में प्रयुक्त विचार को स्पष्ट करने में मदद करता है। इसका संबंध राजनीति, राज्य, न्याय, स्वतंत्रता, समानता आदि के बारे में विभिन्न राजनीतिक विचारकों के व्यापक चिंतन से है। क्योंकि यह सभी राजनीतिक आलोचनात्मक मूल्यांकन के पात्र हैं। यह नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र और नैतिकता से जुड़ा हुआ है। राजनीतिक सिद्धांत में यह उपागम अच्छे जीवन का स्रोत माना जाता है।

एंड्रू विंसेंट अपनी कृति *Nature of Political Theory* में इसे शास्त्रीय आदर्शी (Classical Normative) राजनीतिक सिद्धान्त की संज्ञा देते हैं। उनका मानना है कि यह एक समय विहिन उपक्रम है, जिसमें प्लेटो से लेकर वर्तमान समय तक के सिद्धान्तकार शामिल हैं। उनका यह भी मानना है कि इसका सार्वभौमिक सरोकार है, क्योंकि मानव समाज में सामान्य लक्ष्य और उद्देश्य है। यह बताती है कि मानव समाज को अच्छे भविष्य के लिए "कैसे रहना चाहिए"। यही कारण है कि इसकी प्रवृत्ति निर्देशात्मक है। विंसेंट बताते हैं कि लियो स्ट्रॉस (Leo Strauss) ने इसमें सांस्कृतिक संकट की विषयवस्तु पर ध्यान दिया, जिससे उन्हें आधुनिकता की तीन लहरें नज़र आई जो शास्त्रीय राजनीतिक दर्शन और आधुनिक राजनीतिक दर्शन के विभाजन का कारण बनी। इसकी पहली लहर में मैकियावेली (Machiavelli), जो कि आधुनिक राजनीतिक दर्शन के जनक मने जाते हैं, उन्होंने सभी प्रकार की नैतिकता और धर्म को राजनीति के अधीन किया। दूसरी लहर में रूसो (Rousseau) हैं, जिन्होंने राजनीति के लिए नैतिक मानक इतिहास से लिए हैं और तीसरी लहर में नीत्शे (Nitzsche) और हाइडेगर (Heidegger) जैसे जर्मन दार्शनिक शामिल हैं, जिन्होंने इसमें नास्तित्ववाद (Nihilism) को जोड़ा जो यह मानती है कि जीवन का कोई सार्थक महत्त्व नहीं है।

विंसेंट का मानना है कि इसके बाद राजनीतिक सिद्धान्त के इस उपागम का लेना-देना प्राकृतिक क़ानून, नीतिशास्त्र से ज़्यादा रहा है। वह यह भी मानते हैं कि आधुनिक दर्शन की इस परंपरा को दार्शनिक आन्दोलनों, अरस्तूवाद, प्लेटोवाद, मध्यकालीन ईसाई धर्म से भी जोड़ सकते हैं। आधुनिक राजनीतिक दर्शन ने राज्य के कारण, संप्रभुता और राजनीतिक व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसे आनुभविक राजनीतिक सिद्धांत से चुनौती मिलने लगी क्लासिक राजनीतिक चिंतन के दो महान दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू अपने युग के राजनीतिक सिद्धांत में राजनीति, सिद्धांत का विचार और दर्शनशास्त्र की परंपरा, तीनों को शामिल करने की कोशिश करते थे।

इसकी कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे, क्योंकि यह राजनीतिक दर्शन शास्त्र का भाग है इसलिए इसमें Philosophy यानी कि दर्शन का बहुत प्रभुत्व है। दूसरा यह सर्वोत्तम अच्छाई में विश्वास रखता है। देखने योग्य यह है कि सर्वोत्तम अच्छाई उदारवादी और समाजवादियों के लिए अलग-अलग हो सकती है। जहाँ एक उदारवादी सर्वोत्तम अच्छाई को व्यक्तिगत स्तर से देखने की कोशिश करता है, वहीं एक समाजवादी सर्वोत्तम अच्छाई को सामाजिक स्तर से देखने की कोशिश करता है। यह राजनीतिक सम्पूर्णता में विश्वास करता है, जिसमें दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, नैतिकता, राजनीतिक वैधानिकता अर्थात् सब कुछ होता है। यह उपागम मूल्यों को अधिक महत्त्व देता है। राजनीतिक संस्थाओं में और प्रक्रियाओं में सुधार करने पर जोर देता है। यह समाज की भलाई के लिए राजनीतिक संस्थाओं प्रक्रियाओं को 'क्या होना चाहिए?' इस पर जोर देता है। इस प्रकार यह आदर्श राज्य सरकार के प्रकार पर जोर देता है।

इसकी आलोचना इस आधार पर की जाती है कि यह अधिक नैतिक है, काल्पनिक है, और स्वप्नलोकि है। जो

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

राजनीतिक वास्तविकता से परे है। क्योंकि इसका केंद्र-बिन्दु हमेशा से ही 'क्या होना चाहिए' है। उदारवादी या बहुत से राजनीतिक चिंतक इसकी आलोचना इसलिए भी करते हैं, क्योंकि वह मानते हैं कि यह मूल्यों पर आधारित है और मूल्यों पर आधारित होने के कारण इसकी यह कमी है कि मूल्य हमेशा सापेक्षिक होते हैं। वह कभी भी सार्वभौमिक नहीं होते। कौन से मूल्य समाज के लिए अच्छे हैं उसके सर्वोत्तम जीवन को निर्धारित करते हैं। इसको समाज में कभी भी पूर्ण बहुमत नहीं बनता। विंसेंट वर्णन करते हैं कि नीति शास्त्र मानवीय आकांक्षा व जज्बे से जुड़े हैं, इसलिए नैतिक नियम व मानवीय चाहा और जुनून का शिकार होते हैं।

इसलिए इसको लेकर मतभेद बना रहता है कि इसका निर्धारण आखिर करेगा कौन? क्योंकि अक्सर देखा जाता है मूल्य किसी संस्कृति से जुड़े हुए होते हैं। यहाँ निष्पक्षता का प्रश्न का हल नहीं होता इसलिए समाज के जिन समूहों के मूल्यों को नैतिक उस समय के लिए नहीं समझा जाता, उनका सामाजिक भलाई धारा से निष्कासन हो जाता है। इसलिए उनका न्याय संगत होने पर भी प्रश्न उठते हैं।

इन सब के परे हमें यह देखना होगा की आदर्श उपागम राजनीति को अच्छाई और न्याय से जोड़ने की कोशिश करते हैं और इसीलिए यह राजनीतिक संस्थाओं की प्रक्रियाओं और राजनीतिक घटनाओं के आलोचनात्मक मूल्यांकन पर जोर देते हैं।

4. आनुभविक उपागम (Empirical Approach)

आनुभविक-वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धांत एक अमेरिकी देन है यह शिकागो स्कूल चिंतन से निकल कर आई है, जहाँ चार्ल्स मरियम, हैरोल्ड लासवेल, डेविड एप्टर, डेविड ईस्टन ने इसका विकास किया। डेविड ईस्टन अपनी कृति *Decline of Political Thought* में परंपरागत उपागमों को यह कहकर नकार सिया था कि वे सब अतीत के बारे में बेकार की सूचना मात्र देता है। विंसेंट वर्णन करते हैं कि मोन्टेस्क्यु (Montesque), डेविड ह्यूम (David Hume) और एडम स्मिथ (Adam Smith) आदि राजनीतिक विज्ञान को अप्लाइड साइंस बनाने की कोशिश कर रहे थे। इन्होंने राजनीति के अध्ययन को और भी अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए उसे राजनीतिक आदर्शों, मूल्यों, संस्थाओं से हटाकर व्यक्ति और समूह के व्यवहार के संदर्भ से जोड़ दिया। राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाने वाला यह उपागम नैतिकता और मूल्यों से मुक्त है। यह पूर्णता है तथ्यों, अनुभव-अवलोकन, परिकल्पना परीक्षण और विश्लेषण पर आधारित है, इसलिए यह वैज्ञानिक है। यह व्यवहारवाद पर अधिक जोर देता है। गैरी स्टोकर और डेविड मार्श मानते हैं कि आनुभविक उन्मुखी राजनीतिक सिद्धांत में व्यवहारवाद, तार्किक चयन, संस्थागत, कंस्ट्रक्टिविस्ट, मनोवैज्ञानिक, नारीवादी और मार्क्सवाद आदि उपागम आते हैं। यह राजनीतिक विज्ञान का भाग है जिसका कार्य राजनीतिक घटनाओं और प्रक्रिया का अवलोकन (observation), सामान्यीकरण, वर्णन और भविष्यवाणी करना है। डेविड ईस्टन का मानना था कि पारंपरिक राजनीतिक सिद्धांत कुछ और नहीं बस भूतकालीन राजनीतिक उथल-पुथल का नतीजा है जिनकी आज के समय में कोई प्रासंगिकता नहीं है। इसलिए अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक आगे बढ़कर निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेने और राजनीतिक वैज्ञानिकों की अवहेलना होने लगी।

यह आदर्शी उपागम से अलग है क्योंकि यह इस बात पर जोर नहीं देता कि समाज की भलाई के लिए 'क्या होना चाहिए' बल्कि यह उपागम मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था परिस्थिति में यह बताता है कि राजनीतिक वास्तविकता 'क्या

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

है'। इसका जोर क्या है पर होता है इसलिए डेविड ह्यूम में इसे विश्व का आईना बताया था। यह वर्णनात्मक/विवरणात्मक प्रवृत्ति का है, इसका मुख्य काम वर्णन करना है। एंड्रू हेवुड का मानना है कि विज्ञान आनुभविक ज्ञान पर और अवलोकन पर आधारित है इसलिए राजनीतिक विज्ञान मूल्य मुक्त है। यह अनुभवी वर्णनात्मक है जिसका प्रयोग सरकार, राज्य और उनकी संस्थाओं का वर्णन करने के लिए किया जाता है। माना जाता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह उपागम अपनी ऊँचाइयों पर था क्योंकि व्यवहारवाद को बहुत महत्त्व दिया जा रहा था। व्यवहारवाद मानव के अवलोकनीय और मापनीय व्यवहार के अध्ययन से जुड़ा है। इसका प्रयोग डेविड ईस्टन द्वारा राजनीति को और अधिक प्राकृतिक व वैज्ञानिक बनाने के लिए किया गया था। वह राजनीति से दैनिक जीवन के व्यावहारिक अनुभव को जोड़ रहे थे।

इस उपागम के कुछ मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं। पहला, इसका काम राजनीतिक घटनाओं की व्याख्या करना, उन्हें क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित करना, और इस आधार पर कुछ भविष्यवाणी करना है। दूसरा, यह मानता है कि राजनीतिक सिद्धांत का संबंध समाज में व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करने से होना चाहिए उनका मूल्यांकन करने से नहीं होना चाहिए। यह राजनीतिक प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि इसमें सामाजिक विज्ञान द्वारा विकसित कई धारणाओं को राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन के लिए अपनाया है। जैसे शक्ति, विशिष्ट वर्ग, नीति निर्माण, राजनीतिक व्यवस्था और संस्कृति आदि। 1960 के दशक में यह उपागम खोखला पढ़ने लगा क्योंकि यह मात्र विज्ञान और तथ्यों पर ही आधारित था। इसमें मूल्य शामिल नहीं थे। तभी पीटर लासलेट में यह घोषणा की थी की राजनीतिक दर्शन की मृत्यु हो चुकी है और तार्किक प्रत्यक्षवाद का उदय हो गया (Andrew Haywood: 2015)।

1960 के अंतिम दौर में रॉबर्ट नोज़िक, माइकल ओकशॉट, हरबर्ट मार्कयूज़, हन्नाह एरेंट और मेकिंटायर आदि फिर से राजनीतिक दर्शन के पुनरुद्धार में जुट गए (OP Gaba: 2009)।

2.4 समकालीन राजनीतिक सिद्धांत के उपागम

डेविड हेल्ड का मानना है कि राजनीतिक सिद्धांत न तो पूर्ण रूप से राजनीतिक दर्शन पर आधारित है और ना ही पूर्ण रूप से राजनीतिक विज्ञान पर आधारित है। यह इन दोनों का मिश्रण है। क्योंकि ना तो दर्शन और ना ही विज्ञान राजनीतिक सिद्धांत के कार्यक्रम में एक-दूसरे को विस्थापित कर सकते हैं या हटा सकते हैं। एक सफल राजनीतिक सिद्धांत के लिए राजनीतिक मूल्यों के दार्शनिक विश्लेषण और राजनीतिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं की आनुभविक समझ होना बहुत जरूरी है। Baubock (2008: 40) वर्णन करते हैं कि अनुभविक शोध को आदर्श सिद्धांतों के जरिए और आदर्शी सिद्धांतों को आनुभविक शोध के जरिए बेहतर किया जा सकता है। यही कारण है कि राजीव भार्गव वर्णन करते हैं, राजनीतिक सिद्धांत का पुनर्जन्म 1960 के दशक में हुआ क्योंकि मूल्यों और तथ्यों का मिश्रण फिर से किया गया।

भीकू पारेख का मानना है कि दोनों उपागमों में अंतर केवल इस बात का है, कि हम राजनीतिक घटनाओं का अध्ययन किस प्रकार करते हैं? जहाँ दर्शन आधारित उपागम उनका मूल्यांकन करता है वहीं, विज्ञान आधारित उपागम उनका वर्णन करता है।

1970 के दशक से नैतिक मूल्यों में राजनीतिक सिद्धांत कारों की फिर से रुचि उत्पन्न हो गई। उन्होंने माना कि

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

राजनीतिक सिद्धान्त में आदर्शी तत्व भी होने चाहिए। डेविड हेल्ड राजनीतिक सिद्धांत को 4 मुख्य विशेषताओं में बताते हुए कहते हैं। पहला, यह आनुभविक है,क्योंकि यह विभिन्न अवधारणाओं की व्याख्या करता है। दूसरा, यह ऐतिहासिक है, अर्थात् राजनीतिक सिद्धांत विभिन्न राजनीतिक धाराओं को ऐतिहासिक संदर्भ में समझाना चाहता है। तीसरा, इसका सामरिक महत्त्व है क्योंकि यह संभावनाओं का मूल्यांकन करता है। और चौथा और अंतिम यह दार्शनिक है, जो नैतिक बनाता है।

2.5 वैकल्पिक प्रश्न

1. किस चिन्तक को राजनीतिक का जनक कहा गया है।

   (अ) अरस्तू (ब) जॉन लॉक

   (स) थॉमस हॉब्स (द) कार्ल मार्क्स

2. लैटिन शब्द ‘Polis’ का अर्थ होता है।

   (अ) शासन (ब) जनता

   (स) नगर-राज्य (द) इनमें से कोई नहीं

3. किस विचारक ने राजनीतिक सिद्धान्त को दो भागों में बाँटा?

   (अ) जॉर्ज कैटलिन (ब) डेविड हेल्ड

   (स) डेविड ह्यूम (द) अरस्तू

4. आनुभविक उपागम की प्रवृत्ति कैसी होती है?

   (अ) निर्देशात्मक (ब) विवरणात्मक

   (स) आदेशात्मक (द) निगमनात्मक

5. आदर्शी उपागम की प्रवृत्ति कैसी होती है?

   (अ) निर्देशात्मक (ब) विवरणात्मक

   (स) निगमनात्मक (द) आदेशात्मक

6. ऐतिहासिक उपागम के अनुसार विचारक के विचार को समझने के लिए किस पर ध्यान देना होगा?

   (अ) सन्दर्भ पर (ब) विचारक पर

   (स) रचना पर (द) सभी पर

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

7. संस्थागत उपागम का संबंध किसके अध्ययन से है?

    (अ) विज्ञान (ब) दर्शन

    (स) राज्य (द) इनमें से कोई नहीं

8. व्यवहारवाद का जनक किसे माना गया?

    (अ) डेविड ह्यूम (ब) डेविड एप्टर

    (स) डेविड हेल्ड (द) एडम स्मिथ

9. राजनीतिक सिद्धान्त को अधिक वैज्ञानिक की पहल का श्रेय किस चिंतन संस्था को जाता है?

    (अ) शिकागो (ब) कैम्ब्रिज

    (स) फ्रैंकफर्ट (द) इनमें से कोई नहीं

10. किसका मानना है कि राजनीतिक सिद्धान्त न तो पूर्ण रूप में दर्शन आधारित हो सकता है और न ही विज्ञान आधारित हो सकता है?

    (अ) डेविड हेल्ड (ब) डेविड ईस्टन

    (स) डेविड ह्यूम (द) डेविड एप्टर

2.6 अभ्यास प्रश्न

1. राजनीतिक सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?
2. राजनीतिक सिद्धान्त के अध्ययन के उपागम क्या हैं?
3. आदर्शी और आनुभविक उपागम में क्या अंतर है?
4. राजनीतिक सिद्धान्तों का पतन क्यों हुआ? इसके पुनः उत्थान का क्या कारण है?
5. क्या राजनीतिक दर्शन और राजनीतिक विज्ञान को विभाजित रखकर राजनीतिक सिद्धान्त को सफल बनाया जा सकता है? तर्क सहित विवरण करें।

2.7 संदर्भ-सूची

- Bhargava, Rajeev and Acharya, Ashok (2008) *Political Theory : An Introduction* (New Delhi :Pearson)
- *Political Theory* (LPU: Laxmi Publications Pvt. Ltd.)
- David Held –'Introduction' in Held, David (2015) *Political Theory and The Modern State: Essay on State, Power,and Democracy* (Jaipur: Rawat Publications)

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- Andrew Haywood 'Political Theory's in Haywood,Andrew (2015) *Political Theory An Introduction* (London: Red Globe Press)
- Andrew Vincent's We Have a Firm Foundation in Vincent, Andrew (2004) *The Nature of Political Theory* (Oxford: Oxford University press)
- Gerry Stoker and David Marsh 'Introduction' in Marsh, David and Stoker, Gerry (ed.) (2015) *Theory and Methods in Political Science* (England: Pal grave Macmillan)
- 'Historical Approach to Study Political Theory' in *magadhmahilacollege.org*
- Grimsley, Shawn (2020) 'Approaches to Political Theory' (*Study.com)*

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-3

राजनीतिक सिद्धांत की परम्परा : उदारवाद, मार्क्सवाद, अराजकतावाद और रूढ़िवाद

कोमल

संरचना

3.1 परिचय

3.2 उदारवाद

3.3 उदारवाद में राज्य की भूमिका

- 3.3.1 संविधान और राज्य की शक्तियों पर अंकुश
- 3.3.2 परम्परागत उदारवाद
- 3.3.3 उदारवाद का आर्थिक स्वरूप
- 3.3.4 सामाजिक अस्तित्ववाद

3.4 आधुनिक उदारवाद : परम्परागत उदारवाद में बदलाव

3.5 नव उदारवाद

3.6 मार्क्सवाद

- 3.6.1 समाज
- 3.6.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद
- 3.6.3 अर्थव्यवस्था
- 3.6.4 क्रांति
- 3.6.5 राजनीति

3.7 परम्परागत और नव मार्क्सवाद

3.8 अराजकतावाद

- 3.8.1 अराजकतावादी विचारक
- 3.8.2 अराजकतावाद की मान्यताएँ

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.9 रूढ़िवाद का संदर्भ
3.9.1 रूढ़िवाद के विभिन्न स्वरूप
3.9.2 रूढ़िवाद का स्वेच्छातंत्रवादी स्वरूप
3.10 नव-अधिकार और रूढ़िवाद
3.11 निष्कर्ष
3.12 अभ्यास प्रश्न
3.13 संदर्भ-सूची

3.1 परिचय

राजनीति शास्त्र में सिद्धांतों को परम्पराओं के रूप में अध्ययन करना अपने आप में दिलचस्प विचार है। दरअसल परम्पराओं के रूप में राजनीतिक सिद्धांतों का अध्ययन ऐतिहासिक विकास, कार्यशैली और सामाजिक बदलावों की विस्तृत समझ प्रदान करने में मदद करता है। यह राजनीतिक सिद्धांतों के कथनों, विश्वासों और ज्ञान के एक समावेशी रूप को पेश करता है। राजनीतिक क्षेत्र के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए आधुनिक समय के चार राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन अनिवार्य है।

इन आधुनिक सिद्धांतों का उद्भव 18वीं शताब्दी के आरंभ से शुरू होता है। जिसकी शुरुआत उदारवादी सिद्धांतों से देखी जा सकती है, इसमें उदारवाद के समानांतर अराजकतावाद एवं रूढ़िवाद का और विरोधाभास में मार्क्सवादी सिद्धांतों का उदय होता है। इन सिद्धांतों की परम्पराओं के बीच पूर्ण आपसी विभाजन के अलावा कुछ साझा मूल्यों को भी देखा जा सकता है। इन सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करने वाली ताकतें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिघटनाओं की परिणति के रूप में ही सामने आई है। यह अध्याय इन सिद्धांतों की परम्पराओं में मौजूदा घटकों, कारकों और परिस्थितियों के तात्विक आधारों की जाँच को पेश करता है।

3.2 उदारवाद

अंग्रेजी भाषा के शब्द 'लिबेरलिस्म' जिसे हिंदी में उदारवाद के नाम से जाना जाता है। इसकी उत्पति लैटिन भाषा के शब्द 'लिबर' से हुई। लिबर का शाब्दिक अर्थ स्वतंत्र मानव वर्ग से है। (Heywood, 2017: 24) उदारवाद की विचारधारा एक ऐसे समाज को गढ़ने का प्रयास करती है जिसमें व्यक्तिवाद के मूल्यों के साथ प्रतिबद्धता के अलावा समाज में लोगों के हितों और महत्त्वकांक्षाओं को पूर्ण करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

उदारवाद की परम्परा यूरोपीय और ब्रिटिश संस्कृति में भिन्न-भिन्न स्वरूप में उत्पन्न हुई है। जहाँ एक ओर ब्रिटिश उदारवाद में पुरातन और आनुभविक गुणों की विशेषता दिखाई पड़ती है जबकि यूरोपीय उदारवाद फ्रांसीसी पुनर्जागरण और मनुष्य के 'अमूर्त तर्क' के परिणाम (Vincent, 2010: 25) है। उदारवाद की अवधारणा व्यक्तिवाद के मूल्यों,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

राजनीतिक और नैतिक सिद्धांतों पर टिका हुआ है। उदारवाद अपने सिद्धांत में तर्क को विशेष स्थान देता है।

सिद्धांत के स्तर पर परम्परागत उदारवाद मुख्यतः व्यक्तिवाद के मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। जिसमें सभी व्यक्तियों की समानता और स्वतंत्रता को बनाये रखने का दावा किया जाता है। परम्परागत उदारवाद अक्सर स्वतंत्रता की नकारामक धारणा का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रारंभिक स्तर पर उदारवाद न्याय, औपचारिक समानता और समान नागरिकता को बनाये रखने में विश्वास करते हैं। साथ ही क्षमता और योग्यता को आर्थिक व नैतिक आधार पर संसाधनों के वितरण को न्यायोचित मानते हैं।

समाज में सहिष्णुता भी उदारवाद का प्रमुख लक्ष्य है। इस विचार का प्रतिनिधित्व जॉन मिल्टन, जॉन लॉक और जे.एस. मिल जैसे चिंतक करते हैं। इन विचारकों की मतानुसार धार्मिक सहिष्णुता और लोकतंत्र समाज और व्यक्ति दोनों के विकास के लिये आवश्यक है।

3.3 उदारवाद में राज्य की भूमिका

उदारवाद कानून और व्यवस्था को बनाने के लिए राज्य की संरचना और सामाजिक संविदा के सिद्धांत को तय करते हैं। इसकी शुरुआत आधुनिक समय में हाब्स व लॉक के विचारों होती है। सामाजिक संविदा के सिद्धांत में समाज से राजनीतिक सत्ता का निर्माण होता है। जिसमें राज्य केवल तटस्थ भूमिका का निर्वहन करता है। इसमें सरकार का उदय सहयोग और शासितों की सहमति से होता है। राज्य की इस भूमिका पर थॉमस पेन ने 'राज्य को आवश्यक बुराई की संज्ञा' (Heywood, 2017: 43) दी है।

3.3.1 संविधान और राज्य की शक्तियों पर अंकुश

शासन की निरंकुशता पर अंकुश लगाने के लिए सीमित सरकार के विचार को संविधान के जरिये प्रतिपादित किया जा सकता है। उदारवादी राज्य के सन्दर्भ में सरकार की शक्तियों, संस्थानों और जिम्मेदारियों पर बाहरी व कानूनी अंकुश को लिखित स्वरूप में संविधान में दर्ज किया जाता है। सरकार द्वारा शक्तियों का उल्लंघन होने पर जाँच का कार्य सिर्फ संविधान नहीं करता बल्कि अन्य संस्थानों और नेटवर्क के द्वारा भी शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। सरकार की शक्तियों को संतुलित करने के लिए संविधान नागरिक समाज और नागरिकों की स्वतंत्रताओं को भी सुनिश्चित करता है।

3.3.2 परम्परागत उदारवाद

उदारवाद का आरंभिक स्वरूप प्राकृतिक अधिकारों, उपयोगितावाद, आर्थिक उदारवाद और सामाजिक डार्विनवाद की अवधारणाओं पर आधारित है। थॉमस हाब्स एक दुरुस्त सरकार की स्थापना कानून और व्यवस्था व सुरक्षा को बनाये रखने के लिए करते हैं। हालाँकि हाब्स पूर्णतया निरंकुश शासन व्यवस्था की परिकल्पना करते हैं। इस निरंकुश शासन के रूप में हाब्स ने राजतन्त्र की स्थापना की वकालत भी की है। 17-18 वी शताब्दी में लॉक इंग्लैंड में और जेफ़र्सन अमेरिका में मानव होने के नाते कुछ अधिकारों की पहचान करते हैं। इन विचारकों के अनुसार मानवीय अस्तित्व को बनाये रखने के लिए इन अधिकारों को मानव से अलग नहीं किया जा सकता। लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति को मानव के तीन प्राकृतिक अधिकारों के रूप में परिभाषित किया है। इन अधिकारों के अलावा राज्य शांति व्यवस्था को बनाये रखने,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

बाहरी आक्रमण से सुरक्षा देना और सामजिक संविदा को लागू करने का कार्य करता है। इस के अतिरिक्त राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप की भी वकालत की गयी है। (Heywood, 2017: 44)

शासन की अवधारणा ऐसी नीतियों और संस्थानों के निर्माण पर जोर देती है, जिस से समाज के अधिकतम लोगों के भले को निश्चित किया जा सके। उदारवाद के अनुसार समाज में संस्थानों और कानूनों को परखने का तरीका समाज की अधिकतम ख़ुशी व नैतिकता के आधार पर तय किया जाना चाहिए। जिस से किसी भी कार्यवाही की न्यायोचितता भी सिद्ध हो सके।

3.3.3 उदारवाद का आर्थिक स्वरूप

उदारवाद की उत्पत्ति आर्थिक विकास, औद्योगिकीकरण के विचार से जुड़ा हुआ है। इस विषय पर एडम स्मिथ की कृति *'वेल्थ ऑफ़ नेशन'* (Heywood, 2017: 48) में और डेविड रिकार्डो के द्वारा लिखे लेखों में देखने को मिलता है। परम्परागत उदारवाद में मनुष्य को 'आर्थिक व्यक्ति' की संज्ञा की गयी है। यह अवधारणा बाज़ार की स्वतंत्रताओं, उन्नति और देखरेख के सन्दर्भ में राज्य की भूमिका को अहम मानते हैं। उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में राज्य की अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन करते हैं।

3.3.4 सामाजिक अस्तित्ववाद

सैमयूल स्माइल्स की पुस्तक *'सेल्फ-हेल्प'* (Heywood, 2017: 48) ने व्यक्तिगत उतरदायित्वों और अहस्तक्षेपवाद जैसे मूल्यों को बढ़ावा दिया। समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग को लेकर रिचर्ड कोबडन ने श्रमिक वर्ग की स्थिति में सुधार की बात की लेकिन उसके लिए श्रमिक वर्ग को स्वयं प्रयास करके आत्म निर्भर होना होगा। इसी के समानांतर हर्बर्ट स्पेंसर ने भी सामाजिक क्षेत्र में 'योग्यतम की उत्तरजीविता' (Survival of the fittest) जैसे सिद्धांत की पैरवी की और धन, सामाजिक ओहदे की असमानता को प्राकृतिक माना।

सरकार की न्यूनतम भूमिका और आर्थिक क्षेत्र में अत्याधिक स्वतंत्रता ने 1930 के दौर में आर्थिक संकट, बेरोजगारी जैसे कई आर्थिक संकटों को जन्म दिया जिसने परम्परागत उदारवादी मूल्यों और स्वतंत्र बाज़ार व्यवस्था पर पुनर्विचार करने को मजबूर किया। इन संकटों ने जॉन मेनार्ड कीन्स 'द जनरल थ्योरी एम्प्लॉयमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी' बाज़ार उपायों से बेरोजगारी को दूर कर अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान पर जोर दिया।

3.4 आधुनिक उदारवाद – परम्परागत उदारवाद में बदलाव

परम्परागत उदारवाद के विपरीत आधुनिक उदारवाद राज्य के पूर्ण अहस्तक्षेप के स्थान पर राज्य को हस्तक्षेप और सक्रिय भूमिका में देखता है। आधुनिक उदारवादी विचारकों में मिल, कांट, ग्रीन, एल.टी. हाबहाउस को देखा जा सकता है। यह रूप व्यक्तिवाद के विपरीत सामूहिकता (Freeden, 2015: 132) को अपनाये जाने पर बल देता है। परंपरागत उदारवाद जहाँ आर्थिक उदारवाद पर बल देता है वही आधुनिक उदारवाद सामाजिक पक्ष को अहम मानते हैं।

अहंकारी व्यक्तिवाद के स्थान पर आधुनिक उदारवाद विकासवादी व्यक्तिवाद और बहुलवाद पर जोर देते हैं। इसका अर्थ था कि राज्य मनुष्य को एकांकी के जीवन की स्थिति से अलग मनुष्य के हुनर और क्षमताओं को निखारने में मदद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

करें। यह अधिकतम उपयोगिता के विपरीत व्यक्तिगत विकास को तवज्जो देते हैं। नकारात्मक स्वतंत्रता के बजाय आधुनिक उदारवादी सकारात्मक स्वतंत्रता को जरुरी मानते हैं। यह नागरिकों पर केवल कानूनी और भौतिक प्रतिबंधों के अतिरिक्त ज्ञान और आत्मपूर्ति के लिए भी स्वंतत्रता के मायनों का विस्तार करते हैं। इस सकारात्मक स्वंतत्रता के विचार का समर्थन टी.एच. ग्रीन, एल.टी. हाबहाउस जैसे विचारकों ने किया।

आधुनिक उदारवाद ने समाजवाद के मूल्यों को अपनाया है। इस के परिणामस्वरूप गरीबी, बीमारी और अज्ञानता को दूर करने के लिए सरकार लोक कल्याणकारी योजनाओं में निवेश करती है। हालाँकि आधुनिक उदारवाद की कल्याणकारी योजनाएँ अवसर की समानता को आगे बढ़ाने और सामजिक उतरदायित्व को सुनिश्चित करने का कार्य करता है।

3.5 नव उदारवाद

नव उदारवादी परम्परागत उदारवादियों की भाँति आर्थिक लाभों को अधिकतम करने पर जोर देता है। (Freeden, 2015: 142) इसमें राजनीतिक संस्थाओं और क्षमताओं में सुधार के साथ-साथ शांति और अंतरराष्ट्रीय एकजुटता को सुनिश्चित करता है। नव उदारवादी कीनेसियन अर्थव्यवस्था से परे कुछ सुधारों पर जोर देता है। नव उदारवाद निजीकरण को बढ़ावा देने, करों और खर्चों में कटौती करने पर बल देता है। इनका मानना है कि बाज़ार व्यवस्था में सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को हल करने का सामर्थ्य है। नव उदारवादी विचारक आधुनिक उदारवादियों के स्थान पर परम्परागत उदारवादियों के व्यक्तिवाद, बाजारवाद, आर्थिक तार्किकता और आत्म निर्भरता से प्रेरणा हासिल करते हैं।

नव उदारवाद राज्य-विरोधी विचार का समर्थन करते हैं। क्योंकि नव उदारवादी चिंतक राज्य को दमनकारी और स्वतंत्रता के लिए बाध्यकारी मानते हैं। इस नव उदारवादी अवधारणा का प्रतिपादन फ्रेडरिक हयेक, मिल्टन फ्रीडमैंन, लुद्विग और रोबर्ट नोजिक जैसे विचारकों ने इन अवधारणों के विकास में योगदान दिया है।

नव उदारवादियों की माने तो सरकार का हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था में नुकसानदायक है। मिल्टन फ्रीडमैंन ने राज्य की सोच और लोककल्याणकारी भूमिका पर सवाल उठाये हैं। फ्रीडमैंन के अनुसार दरअसल राज्य जिस बेरोजगारी को दूर करने के प्रयासों के नाम पर करों की वसूली करता है अथवा राज्य की भूमिका को अहम मानता है, वह बुनियादी रूप से ही गलत है, क्योंकि बेरोजगारी की एक प्राकृतिक दर बने रहना स्वाभाविक है। मिल्टन के अनुसार वास्तव में इस बेरोजगारी को दूर करना किसी भी सरकार के लिए मुमकिन नहीं है। (Heywood, 2017: 87)

3.6 मार्क्सवाद

मार्क्सवाद की अवधारणा मुख्य रूप से इतिहास की दर्शन पर टिकी है। यह दर्शन पूँजीवाद के विकास को ऐतिहासिक और सामाजिक वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में पेश करता है। इतिहास की भौतिक अवधारणा के वैज्ञानिक अध्ययन के कारण एंजेल्स के अनुसार मार्क्स का सिद्धांत अन्य विचारकों से अलग है। मार्क्स ने पुस्तक के रूप में लेखन की शुरुआत 1845 की अपनी पुस्तक *'द होली फमिली'* से की। मार्क्स ने दो क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके अनुसार अर्थव्यवस्था समाज में अलगाव की मुख्य वजह है, भौतिक ताकतों के माध्यम से ही मनुष्य को अर्थव्यवस्था से आज़ाद कराया जा

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

सकता है। (Singer, 2000: 32)

मार्क्सवादी परम्परा में बेहद मजबूत राज्य—विरोधी तत्त्वों को देखा जा सकता है। बाद में लेनिन ने पुस्तक *'स्टेट एंड रेवोलुशन'* 1917 में भी राज्य विरोधी प्रवृतियाँ के संदर्भ में कम्यून आधारित और स्थानीय मजदूरों द्वारा संचालित व्यवस्था की परिकल्पना की है। मार्क्सवादी विचारधारा दरअसल पूँजीवाद के विरोधाभास के रूप में उभरी थी।

3.6.1 समाज

समाज के विकास के परिपेक्ष्य में मार्क्स ने अपनी पुस्तक *'द जर्मन आइडियोलॉजी'* (1860) में समाज के इतिहास का चार चरणों में उल्लेख किया है। (Heywood, 2017: 116) इस सिद्धांत के अनुसार विश्व का विभाजन और सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं का विकास आदिम, ग्रामीण, कृषि और वाणिज्यिक जीवन के रूप में एकरेखीय रहा है। पहला, आदिम साम्यवाद अथवा जनजातीय समाज जिसमें संसाधनों की कमी के कारण समाज में संघर्ष होंगे। दूसरा, परम्परागत दास समाज, इसमें मुख्यतः मालिक और दास के बीच मतभेद पूर्ण सम्बन्ध थे। तीसरा, सामंती समाज में जमींदारों और कृषि मजदूरों के बीच विरोधाभास था। और चौथा पूँजीपति समाज में बुजुर्वा और सर्वहारा वर्ग (पूँजीपतियों और मजदूरों) के बीच टकराव पूर्ण रिश्ते रहे। क्रांति के पश्चात् समाजवाद की स्थापना होगी जिसमें सभी संसाधनों पर राज्य का सामूहिक स्वामित्व होगा। हालाँकि समाजवाद में दो वर्गों और राज्य का अस्तित्व रहेगा परन्तु इस समाज में शासित शासन करने और पूर्व में शासन करने वाले शासित होंगे। मार्क्स की अवधारणा में वर्ग की समझ यूरोपीय इतिहास के अध्ययन से प्रेरित है। (Bottomore, 1991: 514)

3.6.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्सवादियों के अनुसार भौतिक परिस्थितियाँ मानव जीवन के लिए प्राथमिक है। यही भौतिक परिस्थितियाँ ही मानवीय, सामाजिक और राजनीतिक चेतना को भी निर्धारित करती है। (Vincent, 2010 : 103) यह अवधारणा इतिहास की भौतिक समझ पर आधरित है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार समाज में वर्ग संघर्ष होना मानवीय इतिहास का हिस्सा रहा है। (Bottomore, 1991 : 238) इसके अनुसार इतिहास की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं के पीछे शक्तिशाली आर्थिक ताकतों का हाथ रहा है। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन से समाज खास तरह के वर्ग में विभाजित हो जाता है। समाज में यह वर्ग आपस में एक दूसरे के साथ संघर्ष शील अवस्था में रहते हैं। (Bottomore, 1991 : 234)

3.6.3 अर्थव्यवस्था

परम्परागत अर्थशास्त्र से मार्क्स कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर रोशनी डालते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीपति अपनी संपत्ति मजदूरों के श्रम से बनाते हैं। पूँजीपतियों अधिक-से-अधिक संपत्ति इसलिए बना पाते हैं क्योंकि वे मूल्यों की निश्चित रकम अपने पास रखते हैं। पूँजी कुछ और नहीं बल्कि श्रम का संचयन है। 1859 में *'अ कॉन्ट्रिब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ़ पोलिटिकल इकॉनमी'* में मार्क्स लिखते हैं कि सामाजिक चेतना और कानूनी व राजनीतिक संरचनाएँ का आधार आर्थिक व्यवस्थाएँ होती है। इन आर्थिक आधारों का असर राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और जीवन के अन्य पहलू पर भी दिखाई देता है।

मार्क्स की पूँजीवादी आलोचना अलगाववाद की धारणा पर आधारित है। अलगाववाद को आज के समय में

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मार्क्सवाद की केन्द्रीय अवधारणा के रूप में जाना जाता है। अलगाववाद के विषय में मार्क्स अपनी पुस्तक *'द जर्मन आइडियोलॉजी'* में लिखते हैं। (Heywood, 2017: 116) इस पुस्तक में अलगाववाद के चार चरणों का जिक्र किया गया है—

मजदूरों का उत्पाद से अलगाव : अक्सर पूँजीवादी उद्योगों में मजदूर ऐसे उत्पादों का निर्माण करते है, जिसे वे स्वयं के उपभोग के लिए नहीं बल्कि बाज़ार व्यवस्था से लाभ को अर्जित करने के उद्देश्य से निर्मित होती है।

श्रम प्रक्रिया से अलगाव : मजदूरों को अधिकतर पर्यवेक्षक के अधीन कार्य करना होता है। उद्योगों में तकनीकी कार्य के लिए योग्यता, एकग्रता और कार्य की समय सीमा श्रमिक प्रक्रिया को नीरस बना देती है। जिसमें किसी प्रकार की रचनात्मकता संभव नही हो पाती।

सह कर्मियों से अलगाव : कार्य का सामाजिक न होने के कारण अक्सर मजदूरों में स्वार्थ की भावना देखी जाती है। इसमें सहयोग के स्थान पर प्रतिस्पर्धात्मक कार्य प्रणाली होने के कारण मजदूरों के बीच भी अलगाव होता है।

मजदूरों का स्वयं से अलगाव : पूँजीवाद मजदूरों के लिए ऐसे माहौल को बनाता है। जिस से मजदूर एक वस्तु की भाँति कार्य करता है। कम वेतन और ओवरटाइम करने की वजह से अक्सर मजदूर स्वयं के परिवार और विश्राम के पलों से दूर हो जाते हैं।

3.6.4 क्रांति

मार्क्स के अनुसार शोषण और अलगाववाद ही पूँजीवाद में क्रांतिकारी परिवर्तन का मुख्य कारण बनेंगे। इस में व्यक्ति उत्पादक के रूप में समाज के खिलाफ स्वयं को दमन और उत्पीडन से मुक्त करने के संघर्ष करेगा। इसी कारण यह परिवर्तन नैतिक होगा। यह परिवर्तन बिना संपत्ति को खत्म हुए संभव नहीं है। 1852 में जोसेफ वेय्देमेयेर को लिखे पत्र में मार्क्स ने कहा कि यह वर्ग संघर्ष सदैव नहीं बने रहेंगे। वर्ग-संघर्ष के जरिये समाज से इन विभाजनों को हटाया जा सकता है। मार्क्स की माने तो शोषण का मुख्य आधार समाज में फैली 'झूठी चेतना' है। जिसे दूर करने के लिए मजदूरों के बीच वर्ग चेतना का होना बेहद जरुरी है। (Mukherjee et al., 2019: 448)

3.6.5 राजनीति

मार्क्स ने अपनी पुस्तक कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में 1848 के दौरान राज्य की भूमिका पर चर्चा की। मार्क्स के अनुसार पूँजीपति राज्य को यंत्र की भाँति प्रयोग करते हैं। इसके कारण पूँजीपतियों और राज्य के बीच का सम्बन्ध यांत्रिक होता है। इसमें राज्य केवल आर्थिक रूप से प्रभुत्वशाली वर्ग के अधीन कार्य करेगा। इस प्रकार की स्थिति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग अन्य वर्गों के हितों का दमन करते हुए अपने हितों को साधते हैं।

1851 के दौरान फ्रांस में नेपोलियन-III के स्थान पर बोनापार्ट राज्य की स्थापना हुई। मार्क्स ने राज्य की बदलती हुए प्रवृतियों पर गौर किया। बोनापार्ट राज्य की इन बदलती प्रवृतियों को मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'द ऐतिन्थ बुरुमैर ऑफ़ लुइस बोनापार्ट' दर्ज किया। (Wolff & Leopold, *Karl Marx* 2020) दरअसल राज्य की इस भूमिका को मार्क्स 'वर्ग संतुलन' का नाम देते हैं। इस मॉडल के अनुसार राज्य पूँजीपतियों और मजदूरों से अलग एक निष्पक्षता की भूमिका का

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

दावा पेश करता है। ऐसी स्थिति में राज्य स्वायत्त रहकर दोनों वर्गों से दूरी बनाते हुए अपने हितों का प्रतिनिधित्व करता है। हालाँकि इस परिस्थिति में भी राज्य पूँजीपतियों के हितों का निर्वहन ही करते हैं। परंतु अब यह पूँजीपतियों का राज्य की नीतियों पर प्रभाव डालना केवल एक कारक की भाँति ही कार्य करता है।

3.7 परम्परागत और नव मार्क्सवाद

परम्परागत मार्क्सवाद में दो मुख्य चरणों को देखा जा सकता है। पहला, इस समूह में द्वितीय अंतरराष्ट्रीय संगठन के सिद्धांतकारों जिसमें कार्ल कौटसकी और प्लेखनेव जैसे लोग शामिल थे। बाद में यह कार्यकारी संगठन के रूप में उभरी जिसमें रोसा लक्समबर्ग, लेनिन और लियोन ट्रोट्स्की जैसे लोग शामिल थे। इस समूह के परिणाम स्वरूप कम्युनिस्ट इंटरनेशनल 1919 में स्थापित किया गया। (Heywood, 2017: 119)

20वीं सदी में साम्यवादी क्रांतिकारियों ने विशेष रूप से राजनीतिक सत्ता को जीतने पर ध्यान केन्द्रित किया। हालाँकि साम्यवादी क्रांति उस परिस्थिति और प्रणाली में नहीं हुई जिसकी कल्पना मार्क्स ने की थी। उदाहरण के रूप में क्रांति रूस और चीन जैसे देशों में हुई जो कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी। जबकि मार्क्स ने क्रांति की कल्पना पश्चिमी यूरोप के विकसित पूँजीवादी देशों के लिए की थी।

लेनिन ने क्रांति के विचार और वर्ग चेतना को सुनिश्चित करने के लिए एक क्रान्तिकारी पार्टी को स्थापित करने पर जोर दिया। यह पार्टी लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित थी। हालाँकि यह विचार शीघ्र ही एक दल की तानाशाही में बदल गया और इसने बाकी अन्य सभी दलों का दमन करना शुरू कर दिया।

नव मार्क्सवादियों ने वर्ग विश्लेषण पर पुनर्विचार करने पर जोर दिया। इनके अनुसार परम्परागत मार्क्सवाद केवल दो वर्गों के विश्लेषण तक सीमित है। नव मार्क्सवादी आधार और संरचना के बीच के संकीर्ण सम्बन्ध को तोड़ने में भी सफल रहे है। (Heywood, 2017: 121) ग्राम्सी ने इस विषय में लिखा कि पूँजीपति केवल असमान आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के जरिये ही शासन नहीं करते बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप में बुजुर्वा प्राधान्यता 'हेजेमनी' के जरिये भी शासन करते हैं।

बाद में नव मार्क्सवादियों में थियोडोर अड्नोरे, मैक्स होर्खेइम, हर्बर्ट मरकुस जैसे चिंतकों ने फ्रंफुर्ट स्कूल या आलोचनावाद के विचार की भी स्थापना की।

3.8 अराजकतावाद

अराजकतावाद की परम्परा राज्य को वास्तविक बुराई, मानवीय स्वाभाव को अच्छा और समाज को प्राकृतिक संस्था के रूप में देखते हैं। इस शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के शब्द 'अनार्किया' से हुई है। जिसका अर्थ था किसी शासक का न होना। इस परम्परा का विश्वास है कि मनुष्य आपसी सहयोग से न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करने में समर्थ है। अराजकतावाद इस दिशा में समाज को राज्य के बलपूर्वक शक्तियों के बिना संगठित करने का प्रयास करता है। यह अवधारणा समाज में न्याय की स्थापना को तभी संभव मानती है, जब सरकार को पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से समाप्त

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कर दिया जाये। दूसरे शब्दों में अराजकतावाद का उद्देश्य राज्य और सभी प्रकार की राजनीतिक सत्ता को उखाड़ फेंकना है। संक्षेप में अराजकता तीन आधारभूत अवधारणाओं पर आधारित है।

- यह एक गैर-बाध्यकारी व पदसोपनीय व्यवस्था के विरुद्ध वैकल्पिक व्यवस्था स्थापित करता है।
- इस व्यवस्था को परम्परागत राज्य यंत्रों के बिना हासिल किया जाता है।
- इसमें सदस्य स्वेच्छा से भागीदारी करते हैं।

3.8.1 अराजकतावादी विचारक

प्राचीन विश्व में अराजकतावाद की अवधारणा का इतिहास एपिकुरेंस और स्यनिक्स की विचारधारा में देखने को मिलता है। एपिकुरेंस और स्यनिक्स मनुष्य को राजनीतिक गतिविधियों और राजनीतिक जीवन से पीछे हटकर शांति को स्थापित करने के लिए स्वनियंत्रण को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। स्यनिक्स के विचार एक राष्ट्र और भू-भाग विशेष से परे सार्वभौमिकता के मूल्यों की पैरवी करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

हालाँकि अराजकतावादी सिद्धांतों में एक रूपता दिखाई नहीं पड़ती यही वजह है कि कई विचारकों ने भिन्न-भिन्न स्वरूप में अराजकतावाद की वकालत की है। आधुनिक समय में विलियम गोडविन अराजकता के विचार का प्रतिपादन करने वाले प्रथम विचारक के रूप में देखे जा सकते हैं। इन्होंने अराजकतावाद पर काफी विस्तार से लिखा। (Philp, *William Godwin* 2021)

गोडविन ने अपनी पुस्तक *'इन्क्वारी कांसर्निंग पोलिटिकल जस्टिस'* (1793) में लिखा है कि मनुष्यों में असमानता समाज की परिस्थितियों के कारण व्याप्त है। वर्ग विभेद, राष्ट्रीयता, भू-भाग व आक्रामक गतिविधियाँ इन असमानताओं के मुख्य कारक है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण सामाजिक संस्थानों के स्थान पर मानव के प्राकृतिक अधिकारों का पुनर्स्थापित किया जाना अनिवार्य है।

अराजकता की झलक मिखाइल बकुनिन के विचारों में देखने को मिलती है। बुकानिन ने अराजकता को अंतरराष्ट्रीय क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में स्थापित किया है। (Bottomore, 1991 : 44) मिखाइल बुकानिन ने हिंसात्मक संघर्षों और आतंकी कार्यक्रमों के जरिये क्रांतिकारी बदलाव लाने की इच्छा जाहिर की है। इस क्रांतिकारी परिवर्तन के द्वारा बुकानिन सभी राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाओं को तुरंत निलंबित कर स्वच्छंद व स्वतंत्र संघ का निर्माण करने पर जोर देते हैं। इन स्वतंत्र संघों से सभी को समान अधिकार और विशेषाधिकार के साथ-साथ अलग होने का भी अधिकार होगा।

3.8.2 अराजकतावाद की मान्यताएँ

अराजकतावाद राज्य-विरोधी और स्वेच्छाचारी संगठन (Gabardi, 1986: 300) इस विचार का प्रतिनिधित्व स्टीनर के विचारों में देखने को मिलता है। स्टीनर ने मानव के दो दुश्मनों की पहचान की। स्टीनर के अनुसार यह दुश्मन राज्य और मैं (State & I) हूँ। (Guérin et al., 1970 : 30) स्टीनर की माने तो सभी राज्य तानाशाह है चाहे यह राज्य एक व्यक्ति हो अथवा व्यक्तियों का समूह द्वारा संचालित हो। राज्य सामान्य उद्देश्यों के लिए व्यक्ति पर नियंत्रण, प्रतिबंध या

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

दमन के लिए कार्य करता है।

अराजकतावादियों के अनुसार हर प्रकार की शासन व्यवस्था अपने आप में समस्यापूर्ण है। इस लिहाज़ से 'प्रतिनिधित्व व्यवस्था' केवल शासित अभिजात वर्ग के निरंतर अस्तित्व को बनाने और सुरक्षित जारी रखने का एक तरीका मात्र है। प्रौन्धों के नज़रिये में 'लोकतंत्र कुछ और नहीं केवल संवैधानिक तानाशाह है'। (Guérin et al., 1970: 32)

परस्पर सहायता

विचारों की कड़ी में पी.जे. प्रौन्धों पहले ऐसे विचारक थे, जिन्होंने स्वयं को अराजकतावादी पुकारा। प्रौन्धों ने *'व्हाट इज प्रॉपर्टी'* (1840) में 'संपत्ति को चोरी माना' है। प्रौन्धों के अनुसार समाज एक प्राकृतिक संस्था है। और मानव एक सामाजिक प्राणी होने के नाते सभी मनुष्यों के साथ पारस्परिक सहयोग के लिए झुके हुए हैं।

पीटर क्रोपोत्किन ने अपने लेखन *'म्यूच्यूअल ऐड : अ फैक्टर ऑफ़ इवोल्यूशन'* में सामाजिकता को सभी परिस्थितियों में बेहतर मानता है। खास तौर पर प्राकृतिक अवस्था को जिसमें मानव जीवन के संघर्ष में असल मानव के विकास का अवसर होता है। क्रोपोत्किन के अनुसार मनुष्य यदि राज्य और कानून से भ्रष्ट नहीं हुए होते तो ऐसी परिस्थिति में लोग सामाजिक एकजुटता के जरिये सरकार की आवश्यकता को ही खत्म कर देते। (Avrich, 2021)

पदसोपनीयता का विरोध

अराजकतावाद मुख्य रूप से पदसोपनीय व्यवस्था और प्रभुत्व का विरोध करती है। यह परम्परा ऐसे राज्यविहीन समाज की कल्पना करती है जहाँ मानव आपसी सहयोग से कार्य कर सके। चूँकि अराजकतावादियों के अनुसार मानव स्वभाव से नैतिक होते हैं। ऐसी स्थिति में मानव शासक और नेता के बिना लाभकारी और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है। हालाँकि मानव स्वभाव को लेकर सभी राजनीतिक चिंतकों के बीच एक राय नहीं रही है। गोडविन ने मानव स्वभाव को तार्किक भलाई और मैक्स स्तिर्नेर ने चेतना के अहंभाव के रूप में दर्शाया है। कुछ चिंतकों ने राज्य की इस पदसोपनीयता को शोषणकारी माना है, जिसमें राज्य कर के माध्यम से व्यक्ति की संपत्ति में हिस्से की दावेदारी पेश करता है। इस परम्परा का एक भाग राज्य को विध्वंसक की संज्ञा भी देता है। जिसमें राज्य भू-भाग के विस्तार के लिए व्यक्तियों का प्रयोग युद्ध में करते हैं।

प्राकृतिक व्यवस्था

जहाँ एक ओर थॉमस हाब्स और लॉक जैसे राजनीतिक चिंतकों ने मानव स्वभाव को लालची और आक्रामक होने के कारण प्राकृतिक अवस्था को अशांतिपूर्ण व असुरक्षित माना है। समाज में शांति और व्यवस्था के लिए कानून को आवश्यक माना है। गोडविन इसके ठीक विपरीत तर्क करते हैं कि मनुष्य तार्किक होने के साथ ही शिक्षा के द्वारा सत्य और सार्वभौमिक नैतिक कानून के अनुसार निर्णय लेने में समर्थ है।

दूसरा, अराजकतावादी प्राकृतिक व्यवस्था में सामाजिक संस्थाओं को सकारात्मक मानवीय क्षमताओं के विकास के लिए बेहतर मानते हैं। परिणामस्वरूप सामूहिक अराजकतावादी इस के लिए साझा संपत्ति या आपसी संस्थाओं पर जोर

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

देते हैं जबकि व्यक्तिवादी अराजकतावादी बाज़ार व्यवस्था को समर्थन देते हैं।

पादरीवाद का विरोध

अक्सर अराजकतावादियों यह विश्वास करते हैं कि धर्म और राजनीति के बीच सम्बन्ध है। प्रौन्धों और बुकानिन ईसाईयत के विरोध के जरिये ही मनुष्य को वास्तव में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर मानते हैं। इस विरोध के कई कारण रहे है जैसे धर्म एक प्रकार के नैतिक व्यवहार को व्यक्तियों पर थोपता है। जिस से व्यक्ति की नैतिक स्वायत्ता और निर्णय लेने की क्षमता बाधित होती है। अराजकतावादी मानव स्वभाव की आध्यत्मिकता को स्वीकार कर सभी प्राणियों के स्वविकास के विचार से मानवता को एकजुट करने को आवश्यक मानते हैं।

आर्थिक स्वतंत्रता

बुकानिन की अवधारणा में राजनीतिक शक्ति और संपदा अवियोज्य (Inseperable) है। (Heywood, 2017: 145) बुकानिन ने समाज को तीन हिस्से विभाजित कर के पेश किया है। पहला बहुसंख्यक जिनका शोषण होता है। दूसरा अल्प संख्यक जो शोषित होते हैं लेकिन अन्यों का भी शोषण भी उसी प्रकार करते हैं। तीसरा, उच्च प्रशासक वर्ग जो शोषणकारी व दमनकारी अल्पसंख्यक समूह है। पूँजीवाद और राज्य के उन्मूलन के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के अराजकतावादियों ने पीड़ित जनता के नाम पर सामाजिक क्रांति लाने की बात को तवज्जो दिया है। आर्थिक विमर्श पर अराजकतावाद दो विचारों के समूह में विभाजित है। सामूहिक अराजकतावादी सहयोग और सामूहिक स्वामित्व का पक्ष लेते हैं। इनका मत है कि पूँजीवाद वर्ग शोषण और संरचनात्मक अन्याय को बढ़ावा देते हैं। इस व्यवस्था से पार पाने के लिए क्रांति के जरिये राजनीतिक परिवर्तन लाना होगा। दरअसल इनका मत है कि मनुष्य की परम क्षमताओं का विकास राज्य के बिना ही हो सकता है। दूसरी ओर व्यक्तिवादी अराजकतावादियों का समूह है जो बाज़ार और निजी संपत्ति का समर्थन करते हैं। व्यक्तिवादी अराजकतावाद अहंभाव और स्वार्थ पर केन्द्रित अवधारणा को पेश करते हैं। इस में सरकार की सीमित भूमिका पर जोर दिया जाता है। इनके अनुसार व्यक्ति की समस्याओं को मनुष्य की तार्किकता से एक बेहतर विमर्श और बेहतर विमर्श बेहतर सुझावों संभव बना सकती है।

अराजकतावाद को स्थापित करने के **तीन मुख्य सुझावित मार्ग** है।

एक, क्रांतिकारी हिंसा के माध्यम से जिसमें डर और भय के माहौल को बनाते हुए अराजकता को स्थापित किया जाये। जिसमें जनता के बीच क्रांतिकारी विचार को प्रसारित करते हुए जनता को विद्रोह के लिए तैयार किया जाये।

दो, प्रत्यक्ष कार्यवाही लोकलुभावन आंदोलनों और प्रत्यक्ष राजनीतिक कार्यवाही में हिस्सेदारी तय करना। इस में विकेंद्रीकृत निर्णय निर्माण की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाता है।

तीन, आधुनिक समय के अराजकतावादियों ने अराजक शांतिवाद पर ध्यान केन्द्रित किया। अराजक शांतिवाद में विश्वास करने वाले अहिंसा को आकर्षक रणनीति के तौर पर देखते हैं जिस से अधिकतर लोगों को जोड़ पाना संभव है। इस में मानव को नैतिक और स्वायत मानते हुए अहिंसा को बेहतर राजनीतिक विकल्प के तौर पर माना गया है।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.7 रूढ़िवाद का संदर्भ

राजनीति में रूढ़िवाद की परम्परा का उदय अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से देखा जा सकता। इस राजनीतिक परम्परा का उदय मुख्यतः यूरोप में उग्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के विरोध में हुआ था। यह सिद्धांत फ्रांसीसी क्रांति और पाश्चात्य देशों के आधुनिकीकरण के विरोध में प्रतीक के रूप में उभर कर सामने आई। रूढ़िवाद शब्द का प्रथम प्रयोग उन्नीसवीं के दौरान हुआ। सरल शब्दों में रूढ़िवाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति संदेहास्पद नज़रिये से देखता है, और हो रहे परिवर्तनों को अस्वीकार करता है। यह परम्परा क्रमिक परिवर्तन, निरंतरता और स्थायित्व में विश्वास रखती है। इस कारण रूढ़िवाद वैचारिक रूप से परंपरागत संस्थानों और व्यवहार को बनाये रखने के विचार का समर्थन करता है।

रूढ़िवाद समाज की जैविक अवधारणा पर बल देता है, जिसमें सभी सदस्य एक दूसरे के साथ निकटता से जुड़े होने के साथ-साथ एक दूसरे पर निर्भर भी होते हैं। रूढ़िवाद की परम्परा व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व में विश्वास नहीं करता।

रूढ़िवादी को अक्सर यूरोप के अर्ध-सामंती कृषक अभिजात वर्ग के पतन के विरोध में उभरी परम्परा के रूप में परिभाषित किया जाता है। यही वजह है कि रूढ़िवाद की परम्परा को ऐतिहासिक रूप से एक विशेष सामाजिक, आर्थिक परिघटना का परिणाम माना जाता है। अमूमन रूढ़िवाद को एक ऐसी अस्थायी ऐतिहासिक घटना के संदर्भ में देखा जाता है जिसमें एक सामाजिक और आर्थिक वर्ग पतन की ओर आगे बढ़ रहा था।

रूढ़िवाद के विचार में थॉमस हाब्स, एडमंड बर्क, एफ़.ऐ. हेयक, माइकल ओकशोट, इरविंग क्रिस्टोल, रोबर्ट नोज़िक जैसे सिद्धांतकार शामिल है।

रूढ़िवाद की आधारभूत मान्यताएँ कुछ इस प्रकार है—

1) **परम्पराएँ :** रूढ़िवाद मुख्यत: 'संरक्षण की इच्छा' पर ज़ोर देता है। जिसमें परम्पराओं के गुणों, स्थापित रीति-रिवाजों और संस्थानों को बनाये रखने पर जोर दिया जाता है। यह परम्परा क्रमिक परिवर्तन, निरंतरता और स्थायित्व में विश्वास रखती है। इसीलिए रूढ़िवाद वैचारिक रूप से परंपरागत संस्थानों और व्यवहार को बनाये रखने का समर्थन करता है। रूढ़िवाद के अनुसार इन परम्पराओं को आने वाली पीढ़ियों के लाभ और संरक्षण के लिए बचाये जाने की आवश्यकता है। वास्तव में रूढ़िवादियों की माने तो परम्पराएँ ही सामाजिक और ऐतिहासिक पहचान का एहसास कराती है। (Heywood, 2017: 35) एडमंड बर्क ने रूढ़िवाद में परम्पराओं की भूमिका पर प्रकाश डाला है।

2) **मानव की अपूर्णताएँ :** रूढ़िवादी मानवीय स्वभाव की स्वतंत्र छवि को नकारते हैं। रूढ़िवादियों का मानना है कि मानव में कई मानवीय अपूर्णताएँ है, जैसे मनुष्य की सीमितता, निर्भरता और सुरक्षा की इच्छा। स्वार्थ, लालच और शक्ति की भूख के कारण मानव नैतिक रूप से भ्रष्ट होते हैं। अपनी इच्छा आकांक्षाओं से घिरे होने के कारण अक्सर मनुष्य स्वार्थी, अतार्किक, हिंसक और अराजक होते हैं। अपराध, अव्यवस्था के लिए भी मानव व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार है। संशयवादी रूढ़िवादियों का तो यहाँ तक मानना कि मानवीय इतिहास ही बुराइयों से भरा हुआ है। (https://www.britannica.com/topic/conservatism/General-characteristics)

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3) **अवयववाद (Organicism) :** अवयववाद के जरिये रूढ़िवाद समाज को एक हिस्से के रूप में न देखकर सम्पूर्णता और जीवंत रूप में परिभाषित करता है। समाज का निर्माण एक प्राकृतिक आवश्यकता के रूप में विभिन्न संस्थानों और सामाजिक ताने-बाने के बीच हुआ है। जिसमें साझा मूल्य और समान संस्कृति के माध्यम से ही समाज में सामाजिक सौहार्द्र को बनाये रखा जा सकता है।

4) **पदसोपनीयता :** रूढ़िवादी दृष्टिकोण में जैविक/ अवयवी समाज (Organic society) में सामाजिक स्थिति और रुतबा में पदक्रम का होना सामान्य बात है। जाहिर तौर पर पदसोपनीयता समाज में भूमिकाएँ और उतरदायित्वों को भी विभाजित करता है। रूढ़िवाद की माने तो इससे किसी प्रकार का मतभेद उत्पन्न नहीं होता बल्कि समाज कुछ सांझी बाध्यताओं (Obligation) और पारस्परिक दायित्वों से बंधा हुआ होता है। समाज में इन कार्यों का विभाजन पूर्णतया भाग्य पर आधरित है। ऐसे में भाग्यशाली और संपन्न लोगों का एक दायित्व दुर्भाग्य से घिरे हुए लोगो के प्रति बनता है।

5) **सत्ता :** रूढ़िवादियों ने सत्ता के ऊपर से नियंत्रण पर भी बल दिया। इस सत्ता के नेतृत्व, अनुभव, दिशानिर्देश का कार्य कुछ खास लोगों को सौंपा गया ताकि शिक्षा, अनुभव और ज्ञान के अभाव से जूझ रहे लोगों को हितों का संरक्षण किया जा सके। हालाँकि इस प्राकृतिक अभिजात स्वरूप को बनाये रखने में सत्ता सामाजिक एकजुटता में लोगों की पहचान और उनके अपेक्षित कार्यों का सामान्यीकरण करती है। मनुष्यों को नियंत्रित करने के लिए परिवारों, चर्च, और स्कूलों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। मनुष्य के वर्तमान हुनर, नैतिकता, व्यवहार और सांस्कृतिक विरासत विशेष रूप से उसके समाज का इतिहास सब कुछ पूर्वजों की देन है। इन सभी के मध्यनज़र सरकारों को कानून के माध्यम से मनुष्य पर लगाम कसने की जरूरत है।

6) **संपत्ति :** रूढ़िवादियों के मतानुसार संपत्ति की हकदारी का होना बेहद आवश्यक है क्योंकि संपत्ति ही व्यक्ति को सुरक्षित बनाती है। रूढ़िवादियों के अनुसार व्यक्ति की संपत्ति ही कानून और अन्यों मनुष्य की संपत्ति का सम्मान करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह संपत्ति अधिकार के साथ-साथ उतरदायित्व भी है। जिसे पूर्वजों से संपत्ति के रक्षक के रूप में प्राप्त कर भविष्य की पीढ़ियों को मूल्य के रूप में सौंप दिया जाता है।

रूढ़िवाद के विभिन्न स्वरूप

सत्तावादी रूढ़िवाद : रूढ़िवाद समूह सत्ता की अवधारणा पर विशेष बल देता है। यह गुण आधुनिक रूढ़िवादियों में भी देखने को मिलता है। भले ही आधुनिक रूढ़िवादी स्वयं को लोकतांत्रिक उदारवादी मूल्यों को समर्थक जताने की कोशिश करें लेकिन आज भी आधुनिक उदारवादियों का समूह सत्तावाद की ओर झुका हुआ है। 1789 की क्रांति के समय भी सत्तावादी रूढ़िवाद परंपरागत रूढ़िवाद के स्थान पर प्रतिक्रियात्मक (Reactionary) की रूप धारण कर सत्ता के पक्ष की पैरवी शुरू की।

रूस में जार निकोलस ने फ्रांसीसी क्रांति के 'स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व नारे के विरुद्ध 'रूढ़िवाद, निरंकुशता और राष्ट्रवाद' के सिद्धांत को बुलंद किया। निकोलस के उत्तराधिकारियों ने भी संविधान और संसदीय संस्थानों के विकास द्वारा जार की शक्तियों पर लगने वाले प्रतिबंधों की नकार दिया। जर्मनी में संवैधानिक सरकार का तो विकास हुआ लेकिन बावजूद इसके संवैधानिक सरकार एक अपमान की तरह से ही देखा गया। कैथोलिक देशों में धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक

©DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विचारधारा के उदय को पोप समाज ने एक हमले की तरह देखा अफ्रीका, एशिया, मध्य पूर्वी देशों में रूढ़िवाद ने अमूमन राष्ट्रवाद का रूप धारण किया।

पितृसत्तात्मक रूढ़िवाद

रूढ़िवाद की यह धारा मूल्यों को बचाये रखने के लिए अनुभवों और व्यावहारिकता के अनुरूप कार्य करने की सलाह देते हैं। एडमंड बर्क रूढ़िवाद को सावधानी, शालीनता, व्यवहारमूलकता (Pragmatic) की संज्ञा देते हैं। बर्क ने फ्रांसीसी क्रांति को प्राकृतिक या अपरिहार्य माना है। साथ ही रूढ़िवाद की यह शाखा व्यक्ति और राज्य के सिद्धांत के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है।

डिजरायली : एकीकृत रूढ़िवादी राष्ट्र

एक राष्ट्र रूढ़िवाद की परम्परा का संबंध डिजरायली के विमर्श में देखा जा सकता है। (Freeden et al., 2015) डिजरायली समाज की आर्थिक असमानता को क्रांति के बीज के रूप में देखते हैं। इंग्लैंड का अमीर और ग़रीब दो राष्ट्रों में विभाजन के खतरे पर डिजरायली ने अपने उपन्यास कोनिंग्स्ब्य (1844) और सिबिल (1845) में विस्तार से लिखा है। यह शाखा समाज में अमीर वर्ग का गरीब वर्ग के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व को पहचान करता है। डिजरायली की माने तो समाज में पदसोपनीयता, संपत्ति और ओहदे की असमानता प्राकृतिक है। इसमें साधन संपन्न लोगों को अपने सामाजिक दायित्वों का वहन करते हुए सम्मानित और शालीनता का व्यवहार करने की नसीहत देते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में डिजरायली के विचारों से प्रभावित ब्रिटेन में रैन्डोल्फ चर्चिल ने 'अनुदारपंथी लोकतंत्र' के जरिये परम्परागत संस्थानों की आवश्यकता पर बल दिया। (Heywood, 2017: 76) इस कड़ी में हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स, चर्च और राजतंत्र जैसे संस्थानों के माध्यम से जन समर्थन का विस्तार किया गया। इसके लिए मजदूर वर्ग के हित में कल्याणकारी योजनाओं का भी सहारा लिया गया। इस प्रकार रूढ़िवाद ने आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाने की शुरुआत की। आधुनिकता के बावजूद भी एक राष्ट्र रूढ़िवाद का विचार पदसोपनीयता को समाप्त नहीं अपितु और अधिक दृढ़ करता है।

3.9.2 रूढ़िवाद का स्वेच्छातंत्रवादी स्वरूप

वैसे तो रूढ़िवाद पूर्व-औद्योगिकता के मुख्य विचार मसलन जैविकता, पदसोपनीयता और कर्त्तव्यपरायणता जैसी परंपरागत उदारवादी अवधारणा से प्रेरित है। उदारवादी अधिकतम स्वतंत्रता के साथ सरकार के न्यूनतम सामाजिक हस्तक्षेप का समर्थन किया जाता है। स्वेच्छातंत्रवादी रूढ़िवाद का यह मानना था कि परम्परागत रूढ़िवाद और उदारवादी अर्थव्यवस्था के साथ सत्ता, कर्त्तव्य जैसे मूल्यों पर अधिक सुसंगत है। हालाँकि स्वेच्छातंत्रवादी रूढ़िवाद आर्थिक व्यक्तिवाद और व्यापार से सरकार के पीछे हटने का समर्थन करते हैं परन्तु व्यक्ति स्वतंत्रता के सामाजिक पहलू के विस्तार को लेकर तैयार नहीं दिखाई देते। यह मानव स्वाभाव के लिए निराशावादी रवैया रखते हैं। स्वेच्छातंत्रवादी रूढ़िवाद मुक्त बाजार के सिद्धांत का समर्थन भी केवल सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए करते हैं। साथ ही बाजारवाद के आने से एक सामाजिक अनुशासन भी कायम हो सकेगा, जिसमें पुलिस व कोर्ट जैसी संस्थाओं की स्थापना हो सकेगी।

©DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.10 नव-अधिकार और रूढ़िवाद

1945 के दौरान व्यावहारिक (Pragmatic) और पितृसत्तात्मक विचारों का अधिक प्रभाव देखा जा सकता था। रूढ़िवाद को अलगाववादी राजनीति के रूप में दक्षिण पंथियों ने अपनाया। इन अवधारणाओं के जरिये रिपब्लिकन पार्टी ने राष्ट्रपति पद के लिए प्रचार किया गया। इस में डगलस मैकआर्थर, बैरी गोल्ड्वाटर, रोनाल्ड रीगन, जॉर्ज बुश जैसे राष्ट्रपति शामिल है। 1950 और 1960 के दशक में रूढ़िवादी रणनीतियों का प्रयोग वामपंथियों के खिलाफ किया गया। 1970 के दौरान सत्तात्मक रूढ़िवाद पुर्तगाली और स्पेनिश तानाशाही के बाद समाप्त हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रूढ़िवाद ने लोकतंत्र को अपना लिया लेकिन इस बीच उग्र रूढ़िवाद ने परम्परागत कीनेसियन लोक-कल्याणकारी की धारणा को भी चुनौती दी। (Heywood, 2017: 82)

नव अधिकार (स्वेच्छातंत्र के मूल्यों का समर्थन करते हुए राज्य के हस्तक्षेप में कटौती के अधिक स्वतंत्रता की माँग) ने मुख्यतः टेलीविजन और फिल्म में सेंसरशिप पर करों में कटौती की माँग और प्रवासियों के आगमन के विरोध जैसे मुद्दों पर विचार शुरू हुआ। वास्तव में परम्परागत उदारवादी अर्थव्यवस्था मुक्त बाज़ार वृहद् सरकारी, आर्थिक व सामाजिक हस्तक्षेप की आलोचना करते हैं। यही आगे चलकर यह नव अधिकार के नाम से जाना गया। दूसरी ओर नव अधिकार परम्परागत रूढ़िवाद का तत्त्व है क्योंकि यह सामाजिक सिद्धांत विशेष रूप से व्यवस्था और अनुशासन के संरक्षक माने जाते हैं।

1980 में सांस्कृतिक युद्ध के दौर में ईसाई अधिकार और नैतिक बहुसंख्यक ने लोककल्याण व नारीवाद की आलोचना की। 2000 तक आते-आते कई समूहों ने संयुक्त राष्ट्र और विदेशी मतों के लोककल्याणकारी राज्य के विरुद्ध की संस्कृति का निर्माण किया।

उदारवादी अवधारणा में रूढ़िवाद के मूल्यों में समानता देखी जा सकती है। जैसे नागरिक संगठन, संवैधानिक प्रतिबद्धता के जरिये संस्थागत जांच को सुनिश्चित करना। नवअधिकार ने आर्थिक विकास पर जोर दिया जो कुछ हद तक रूढ़िवाद के समान है। हालाँकि यह उदारवाद और नव अधिकार के विचार से भिन्न तार्किकता, सामाजिक विनिर्माण के विचार की आलोचना करते हैं।

DDCE/COL/SOL/University of Delhi

3.11 निष्कर्ष

सिद्धांतों का परम्परावादी स्वरूप कई अहम बिंदुओं पर प्रकाश डालता है। उपरोक्त चार सिद्धांतों के विकास का समय लगभग एक समान होने के कारण इनमें एक प्रकार संवाद को देखा जा सकता है। यह संवाद पूरक और विरोधाभास दोनों ही पहलुओं से जुड़ा हुआ है। परम्पराओं के रूप में इन सिद्धांतों ने सांझा विकास और नए बदलावों की स्वीकृति को तरजीह भी दी है। विकास के क्रम में सिद्धांतों के भीतर मौजूद अवधारणाओं को भी कई प्रकार की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। एक समावेशी और व्यावहारिकतापूर्ण सिद्धांतों के रूप में स्वयं को बदलने वाली परम्परा अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल हुई है, जबकि बदलावों में स्वयं को न ढाल पाने वाली परम्पराएँ आज अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.12 अभ्यास प्रश्न

1) अराजकतावाद के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? आज के दौर में अराजकतावादी विचारों की क्या प्रासंगिकता है?
2) उदारवाद के किन मूल्यों को मार्क्सवादी विचारों ने चुनौती दी? क्या आप उन चुनौतियों से सहमत है?
3) रूढ़िवाद की परम्परा के मुख्य आधारों पर चर्चा कीजिये?

3.13 संदर्भ-सूची

- Avrich, P. (2021, February 4). *Peter Alekseyevich KROPOTKIN*. Encyclopædia Britannica. https://www.britannica.com/biography/Peter-Alekseyevich-Kropotkin.
- Bottomore, T. (1991). In *A dictionary of Marxist thought* (SECOND, p. 44). essay, Blackwell.
- Freeden, M. (2015). *Liberalism: A very short introduction*. Oxford University Press.
- Freeden, M., Sargent, L. T., Stears, M., & Sullivan, Noel. O. (2015). Chapter-16 Conservatism . In *The Oxford Handbook of political ideologies* (p. 339). essay, Oxford Univ. Press.
- Gabardi, W. (1986). Anarchism. by David Miller. (London: J. M. dent and Sons, 1984. Pp. 216. £10.95.). *American Political Science Review*, *80*(1), 300–302. https://doi.org/10.2307/1957102
- Guérin Daniel, Chomsky, N., & Klopper, M. (1970). *Anarchism, from theory to practice*. Monthly Review Press.
- Heywood, A. (2007). Chapter- 3 Conservatism. In *An introduction* (pp. 62–94). essay, Palgrave Macmillan.
- Heywood, A. (2017). Chapter-2 Liberalism. In *Political ideologies: An introduction* (Sixth, pp. 24–61). essay, Palgrave Macmillan.
- Heywood, A. (2017). Chapter-4 Socialism. In *Political ideologies: An introduction* (Sixth, pp. 95–136). essay, Palgrave Macmillan.

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- Heywood, A. (2017). Chapter-5 Anarchism. In *Political ideologies: An introduction* (Sixth, pp. 137–162). essay, Palgrave Macmillan.
- Mukherjee, S., & Ramaswamy, S. (2019). Chapter-14 Karl Marx. In *A history of political Thought: Plato to Marx* (Second, pp. 435–477). essay, PHI Leaarning Private Limited.
- Philp, M. (2021, March 25). *William Godwin*. Stanford Encyclopaedia of Philosophy. https://plato.stanford.edu/entries/godwin/.
- Singer, P. (2000). *Marx a very short introduction*. Oxford University Press.
- Vincent, A. (2008). Chapter-2 We have a firm foundation. In *The nature of political theory* (Third, pp. 19–73). essay, Oxford University Press.
- Wolff, J., & Leopold, D. (2020, December 21). *Karl Marx*. Stanford Encyclopaedia of Philosophy. https://plato.stanford.edu/entries/marx/.

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-4

राजनीतिक सिद्धांत में महत्वपूर्ण दृष्टिकोण: नारीवादी और उत्तर आधुनिक

राजिन्दर कुमार

संरचना

4.1 परिचय

4.2 नारीवाद अर्थ और महत्त्व

4.3 सेक्स और जेंडर से समाज विभाजन

4.4 नारीवाद के विभिन्न प्रकार

4.5 भारत में महिलाओं की स्थिति और नारीवाद

4.6 नारीवाद के सामने चुनौतियाँ

4.7 निष्कर्ष

4.8 वैकल्पिक प्रश्न

4.9 अभ्यास प्रश्न

4.10 संदर्भ

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

4.1 परिचय

कहा जाता है कि 'दिन औरत अपनी मेहनत का हक माँगेगी उस दिन दुनिया की सबसे बड़ी चोरी पकड़ी जाएगी'। हालाँकि इस कथन को तथाकथित राजनीतिक वैज्ञानिक या सिद्धांत शास्त्री किसी विशिष्ट विचारधारा से ओत-प्रोत माने पर सच्चाई तो वे भी नहीं नकार सकते। उपर्युक्त कथन जितना सरल लगता है उसकी गहनता और जटिलता उतनी ही अधिक है, इसलिए इसके पीछे की समझ को जानना बहुत अधिक आवश्यक है। ऐसा क्यों है कि हर समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुषों के समान नहीं होती? उन्हें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तौर पर हीन पाया जाता है। क्या ऐसा होना कोई प्राकृतिक कारण है या फिर कोई सामाजिक सांस्कृतिक अनुबंध। इन सभी प्रश्नों पर प्रकाश डालने के लिए नारीवाद को समझना होगा।

राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र में नारीवाद और उसके महत्त्व को जानना जरूरी है। वैसे भी क्लेयर चैम्बर्स (2008) का मानना है कि राजनीतिक सिद्धांत का इतिहास हमेशा से ही पुरुष सिद्धांतवादी रहा है। क्योंकि जितने भी सिद्धांत बने हैं,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उसमें महिलाओं के योगदान को हाशिये पर रखा गया है। नारीवाद को समझने पर ही उसके उद्देश्यों और लक्ष्य को जान सकते हैं। इस लेख को इन्हीं सभी चिह्नों को ध्यान में रखकर गढ़ा गया है।

4.2 नारीवाद अर्थ और महत्त्व

नारीवाद नारी संबंधी उस विचारधारा को कहेंगे जो, समाज में उसकी असमानता, अधीनता, पिछड़ेपन व हाशिए की स्थिति पर ना सिर्फ प्रश्न उठाता है, बल्कि उसको परिवर्तित करने की कोशिश भी करता है। यह ऐसा सिद्धांत है, जो सभी क्षेत्रों में लैंगिक समानता की पैरवी करता है। उसका उद्देश्य ही है कि वर्तमान सामाजिक आर्थिक राजनीतिक व्यवस्था के दमनकारी पुरुष प्रभुत्व को समाप्त किया जाए और महिलाओं की स्वतंत्रता और समानता को बढ़ावा दिया जाए (विक्टोरिया ब्राऊन, 2019)।

विक्टोरिया ब्राऊन(2019) जो कि नारीवाद के ऐतिहासिक विकास को जाँचती हैं, उनका मानना है कि मैरी वॉल्सटॉनक्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) को नारीवाद की जननी मन जाता है। वह बताती हैं कि नारीवाद का इतिहास काफी पुराना है इसकी शुरुआत 19वीं सदी में हुई थी, जब सर्वप्रथम सेनेका फाल्स में 1848 में वूमेन राइट कन्वैक्शन लगा था और उन्होंने महिलाओं के लिए राइट टू वोट यानी मताधिकार की बात की थी इसी को नारीवादी आंदोलन की पहली लहर माना जाता है। और इसकी दूसरी लहर 1960 और 1970 के दशकों में यूरोप और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में स्त्री स्वतंत्रता आंदोलनों के रूप में आई। इस दौरान यूनाइटेड किंगडम में समान भुगतान कानून (Equal Pay Act,1970) और अमेरिका में समान अधिकार संशोधन, 1972 पास हुए थे।

हालाँकि इन दोनों लहरों महिलाओं की माँग के मूल्यों का आंकलन किया जाए तो वह स्वतंत्रता और समानता ही निकल कर आता है। जिसमें स्वतंत्रता का मूल्य उदारवाद और समानता का मूल्य समाजवाद के करीब लाता है। जिस पर आगे नारीवाद के प्रकार में विचार किया जाएगा।

अभी के लिए जो अहम है, वह यह समझना है कि राजनीतिक सिद्धान्त में नारीवाद का क्या महत्त्व है? इस प्रश्न के जवाब देने के लिए नारीवाद योगदान को समझना होगा। जिसपर निवेदिता मेनन का मानना है कि इसका सबसे बड़ा योगदान है, सेक्स व जेंडर में भेद का निर्माण करना।

4.3 सेक्स और जेंडर से समाज विभाजन

नारीवादी विमर्श को समझने के लिए सबसे पहले यह जान लेना जरूरी है कि सेक्स और जेंडर एक ही नहीं हैं, बल्कि दोनों अलग-अलग तरीक़े है जो सामाजिक विभाजन लाते हैं। एक तरफ सेक्स को जहाँ जैविक अर्थ में समझ सकते हैं, वहीं दूसरी तरफ जेंडर को सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ में समझ सकते हैं। अभी यही दो तरीके हैं, यह निर्धारण करने के लिए कि कौन पुरुष, स्त्री, या अन्य है। जिसमें से एक तरीका तो प्राकृतिक रूप में है, जबकि दूसरा मानव निर्मित। हमारा पुरुष प्रधान व्यवस्था हर संभव तरीके से अपनी स्थिति को उच्चतम या नियंत्रण करने वाली रखने के लिए जैविक निर्धारण के तरीके का भी इस्तेमाल अपने वर्चस्व को बढ़ावा देने के लिए करता है। यानी सेक्स के आधार पर ही समाज मे जेंडर भूमिका तय की जाती है। इसके द्वारा ही पुरुष बोला जाने वाला प्राणी अपनी इस चालाकी से दुनिया का मालिक बना

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हुआ है और औरत उसकी नौकर। निवेदिता मेनन का भी मानना है कि जैविक निर्धारण सदियों से महिलाओं के दमन का सबसे वैधानिक यन्त्र बना हुआ है। इसलिए नारीवादी राजनीति के लिए इस जैविक निर्धारण को चुनौती देना बहुत अहम है (Bhargava, Acharaya: 225)। क्योंकि इस प्रकार के निर्धारण ने ही महिलाओं को हीन स्थिति में पहुँचाया है। इसको और बढ़िया से जानने के लिए Simone De Beauvior (सिमोन दी बुआ) की रचना *The Second Sex(1949)* से उस कथन को जाँचना होगा जिसमें वह कहती हैं कि कोई औरत पैदा नहीं होती, बल्कि औरत बन जाती है (One is not born but, rather becomes a woman)। औरत समाज द्वारा बनाई जाती है। जन्म से ही लड़की और लड़के की परवरिश में अंतर रखा जाता है उसके अंदर समाज कुछ ऐसे मूल्यों को गढ़ने की कोशिश करता है जो समाज में विभाजन लाता है हम देख सकते हैं कि लड़का और लड़की के लिए खिलौने, कपड़े, रंगों से लेकर उनके व्यवहार तक को भी अलग तरह से निर्धारित किया जाता है। उदाहरण के तौर पर लड़कियों को बचपन से ही सिखाया जाता है कि वह इधर-उधर नहीं घूमती दिन ढ़लने पर बाहर नहीं निकलती, जबकि लड़कों को सिखाया जाता है कि लड़के रोते नहीं हैं, लड़के किसी से डरते नहीं हैं। दोनों को इस तरह से सामाजिक किया जाता है कि उनमें अलग-अलग मूल्य आ जाएँ लड़के को निडर और लड़की को नाजुक बनाया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि दोनों मैं अंतर बना रहे और दोनों के दायरों को अलग किया जा सके। जहाँ एक लड़के का दायरा बृहद होता है, वही एक लड़की का दायरा बस घर तक सीमित होता है। यहीं से समाज में उन्हें अलग-अलग जेंडर आधारित भूमिकाएँ थमा दी जाती हैं, जिसमें पुरुष को घर से बाहर की सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका प्राप्त होती है और महिला को घर के भीतर की घरेलू भूमिकाओं से जूझना पड़ता है। पुरुष प्रधानता को बनाए रखने के पीछे जेंडर आधारित भूमिका निर्धारण भी अहम किरदार निभाती है। हम यहाँ पर यह भी देख सकते हैं कि कुछ मामलों में सेक्स आधारित अंतर का प्रयोग करके समाज में जेंडर आधारित अंतरों का निर्माण किया और उसके अनुसार सामाजिक भूमिका तय की है। उदाहरण के लिए बच्चे को जन्म देना, उसका स्तनपान कराना सेक्स आधारित अंतर है जो एक महिला करा सकती है, पुरुष नहीं। जबकि बच्चे का ख्याल रखना उसको पालना उसका पोषण करना जेंडर आधारित अंतर है, जो एक पुरुष भी कर सकता है लेकिन जेंडर की भूमिका के तहत यह काम महिलाओं पर थोपा गया है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यह जो जेंडर आधारित अंतर हैं यह समाज के मान्यताओं से थोपे जाते हैं। मानव किसी भी प्राकृतिक नियम को तो नहीं बदल सकता लेकिन उन नियमों को जरूर बदल सकता है, जो खुद उसने समाज में रहकर बनाए हों या संस्कृति के नाम पर बनाए हों। इसीलिए नारीवादी हमेशा जेंडर और उसकी भूमिका की आलोचना करते हैं। क्योंकि यही सब कारण है जो महिलाओं को अधीनता की स्थिति में रखते हैं। कोई भी प्राकृतिक भेद को तो नहीं बदल सकता लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक मानव निर्मित भेद को अवश्य बदल सकता है। सिमोन दी बुआ का मानना है जेंडर समाज निर्मित है इसलिए इसे खत्म किया जाना चाहिए। जबकि नैंसी फ्रेसर भी जेंडर के विनिर्माण की बात करती हैं (Catriona Mckinnon, 2008: 272)। तमाम प्रकार के सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों विचारधाराओं और संस्थाओं ने महिलाओं के वैचारिक और भौतिक अधीनता को जन्म दिया है। इस अधीनता को समाप्त करने के लिए ही नारीवादियों के निम्नलिखित लक्ष्यों को साथ आगे बढ़ रहे हैं—प्रथम, राजनीतिक सिद्धांत के निर्माण में जेंडर की भूमिका को समझना और उसकी आलोचना करना, दूसरा ऐसे राजनीतिक सिद्धांतों को बनाना जो जेंडर समानता को बढ़ावा दें और तीसरा ऐसे राजनीतिक विज्ञान का समर्थन करना या आगे बढ़ाना जो जेंडर समानता की बात करते हैं।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

4.4 नारीवाद के विभिन्न प्रकार

1. **उदारवादी-नारीवादी :** नारीवादियों की इस श्रृंखला में उन शुरुआती नारीवादियों को रखा गया है, जिन्होंने शुरुआती दौर में महिलाओं की समानता और स्वतंत्रता की बात की थी। जैसे मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट (A Vindication of the Right of Women) जे. एस. मिल (Subjugation of women) इन सभी ने अपनी रचनाओं के द्वारा महिलाओं के लिए समान अवसर और निष्पक्ष अवसर की माँग, समान राजनीतिक अधिकारों की माँग की और सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के अंतर को उजागर किया।

2. **मार्क्सवादी-समाजवादी नारीवादी :** इनके द्वारा माना जाता है कि महिलाओं के दमन के लिए वर्ग सिद्धांत की प्रमुख स्रोत है। और महिलाओं के दमन का कारण आर्थिक है जैसा कि हम देख सकते हैं कि महिलाओं को उनको घर में काम करने के लिए कोई आय नहीं मिलती। उनकी स्थिति बंधुआ की तरह है। पुरुष महिलाओं के कारण ही घर के बाहर के काम कर सकते हैं। इसलिए पैसे कमा सकते हैं लेकिन महिला आर्थिक रूप से पूरी तरह पुरुषों पर ही निर्भर है। इसलिए घर में भी महिलाएँ आर्थिक कारणों से पुरुषों के अधीन ही रहती हैं। जहाँ महिलाओं को पैसे कमाने वाले कार्यों में रखा जाता है, वहाँ भी उन्हें पुरुषों के समान कार्य के लिए वेतन काम दिया जाता है।

3. **रेडिकल नारीवादी :** इनका मानना है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री सुलभ मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है महिलाएँ ज्यादा संवेदनशील, स्वाभाविक और प्रकृति के नजदीक हैं। सुसैन ग्रिफिन और एंड्रिया डवोर्किं कहती है कि इन स्त्री सुलभ मूल्यों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। क्योंकि पुरुष नैतिक निर्णय इस आधार पर लेता है कि समाज किसे सही मानता है, इसलिए पश्चिमी नैतिक दर्शन जैसे तार्किकता संप्रभुता व न्याय पुरुषों के अनुभव पर निर्मित है।

4. **उत्तर-आधुनिक नारीवादी :** जुडिथ बटलर मानती हैं कि जेंडर ही जैविक सेक्स की श्रेणी को जन्म देता है। जेंडर का निर्माण शक्ति के संबंधों मानको और पाबंदियों द्वारा होता है। इन नारीवादियों द्वारा बायोमेडिकल साइंस की आलोचना की गई है, क्योंकि रुथ ब्लिर एवं एवलिन फॉक्स केलर मानती है कि सेक्स और जेंडर के बीच का विभाजन सिर्फ बायोमेडिकल साइंस तक सिमट कर रह गया है। नेल्ली ओउदशरून (1994) अपने कार्य में वर्णन करती हैं कि यहाँ जेंडर प्रभावित किया जाता है, क्योंकि यह मानते हैं कि वैज्ञानिक तथ्य गहरे रूप से समाज और संस्कृति में समाहित है। इनका यह भी मानना है कि सेक्स मानवीय व्यवहार से भी बनता है (Bhargava, Acharaya, 2008: 231)।

4.5 भारत में महिलाओं की स्थिति और नारीवाद

भारत में महिलाओं की स्थिति काफी विचित्र है, क्योंकि एक ओर जहाँ महिलाओं को देवी सामान समझा जाता है, उनकी पूजा की जाती है। वहीं दूसरी ओर समाज में महिलाओं की स्थिति काफी निम्न स्तर पर देखी जा सकती है। उनके ऊपर घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, और भी बहुत सारी प्रताड़ना होती रहती हैं। उन्हें पुरुष प्रभुत्व अधीन रहना पड़ता है। यही भारत देश में महिलाओं की स्थिति की विचित्रता है कि एक और तो उन्हें पूजनीय स्थान प्राप्त है लेकिन वास्तविकता में वे पुरुषों

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

के समान तक नहीं मानी जाती हैं। इस प्रकार की भारत में महिलाओं की विचित्र स्थिति या आम भाषा में कहें तो महिलाओं के प्रति दोगलापन का कारण क्या हो सकता है? क्या यह प्राचीन सुविख्यात भारतीय संस्कृति के कारण है? या किसी बाहरी सभ्यता के कारण है? इसका जवाब ढूँढ़ना बहुत जरूरी है।

उमा चक्रवर्ती इन्हीं सब सवालों का जवाब ढूँढ़ते हुए अपने लेख 'Conceptualizing Brahamanical Patriarchy in Early India' का निर्माण करती हैं, जिसमें उन्होंने पाया कि जाति और पितृसत्ता में एक गहरा संबंध है। वह वर्णन करती है कि महिलाओं की अधीनता उन सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से निर्मित होती है, जिसमें महिलाओं को रखा गया है। वह मानती हैं कि धार्मिक परंपराओं से ऐसी सामाजिक क्रियाओं और अभ्यासों का निर्माण होता है, जो महिलाओं को सदा पुरुषों के अधीन रखने की कोशिश करते हैं।

वह लिखती हैं कि जाति पदानुक्रम और जेंडर पदानुक्रम ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के आयोजन सिद्धांत हैं। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता में औरतों की पवित्रता पर जोर दिया जाता है और इसी कारण पुरुषों द्वारा उनकी लैंगिकता पर नियंत्रण किया जाता है। क्योंकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था में रक्त की गुणवत्ता का प्रश्न उठता रहता है, वह रक्त की पवित्रता को बचाए रखना चाहते हैं। वह नहीं चाहते कि किसी भी प्रकार से इस रक्त की शुद्धता को भंग किया जाए, क्योंकि उनके द्वारा समाज पर थोपी गई जाति प्रथा को बनाए रखने का आधार वह रक्त की शुद्धता को ही बताते हैं। इसलिए उन्होंने अंतर-जाति विवाह पर अपने द्वारा निर्मित धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से विरोध प्रकट किया है। उनके लिए सबसे ज्यादा प्रदूषित वह जति है, जो उच्च जाति की महिला और निम्न जाति के पुरुष के मेल का परिणाम है। यदि ऐसा होता है तो उन्हें धर्म से बहिष्कृत किया जाना चाहिए या वह रीति-रिवाज के तहत मृत्यु का भागी है। ऐसा ब्राह्मणवादी ग्रंथो में उल्लेखित है। उमा चक्रवर्ती आगे लिखती हैं कि इस समस्या से बचने के लिए समाज में महिलाओं की लैंगिक अधीनता को ब्राह्मणवादी नियम कानूनों द्वारा संस्थागत बनाया गया और उसे राज्य की शक्ति के द्वारा उन पर थोपा गया।

लेकिन यहाँ यह जानना जरूरी है कि महिलाओं ने इस प्रकार के रीति-रिवाजों या पारंपरिक नियमों का विरोध क्यों नहीं किया? इसका उत्तर देते हुए उमा चक्रवर्ती बताती हैं कि औरतों द्वारा इसका कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि औरतें अक्सर इस पर अपनी सहमति तीन कारणों के वजह से दिखाती हैं जिसमें सबसे पहले विचारधारा, फिर पुरुषों के ऊपर उनकी आर्थिक निर्भरता, और अंत में सहमत न होने स्थिति में उनके ऊपर पुरुषों द्वारा बल का प्रयोग करना है। इसलिए महिलाएँ अक्सर इन सभी स्थितियों में अपनी सहमति दिखाने के अलावा और कुछ नहीं कर सकती।

उमा चक्रवर्ती यह भी वर्णन करती हैं, कि आदि काल में जब शिकार-भण्डारण का दौर था तब महिलाएँ और पुरुष अलग थे, लेकिन समान थे। इसको साबित करने के लिए वह कठोतिया, भीमबेटका और खरवाई की गुफाओं में बनी चित्रकारी का सहारा लेती हैं। और बताने की कोशिश करती हैं, कि उस दौर के समाज में महिला लैंगिकता, महिलाओं के अस्तित्व का एक पहलू था। लेकिन उनके ऊपर कोई लैंगिक नियंत्रण नहीं था। महिलाओं और उनकी लैंगिकता पर नियंत्रण तो वैदिक काल से आया जिसमें प्राचीन राज्य की सामाजिक संगठन द्वारा इसे लागू किया गया। वह बताती हैं कि ऋग्वेद में दासी प्रथा का वर्णन है। आर्य जिसको भी हर आते थे, उनकी औरतों पर कब्जा कर लेते थे, और उन्हें दासी बना लेते थे। तब दासी रखना धन के संचयन के रूप में देखा जाता था। उत्तर वैदिक संस्कृति में आर्यों की महिलाएँ घर के कामों तक ही सीमित रह गई और उनकी दासियाँ खेतों में काम करती थी और आर्य महिलाएँ सिर्फ प्रजनन का काम करती थी।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वह बताती हैं कि किस प्रकार धर्म द्वारा महिलाओं की लैंगिकता और महिलाओं पर नियंत्रण स्थापित किया गया है। देवी देवताओं में भी इसका वर्णन मिलता है क्योंकि देवियाँ बस अपने देवताओं का पालन करती थी, उनके अधीन रहती थी। जातक कथाओं द्वारा भी महिलाओं की स्थिति को हीन बनाया गया। जैसे शतपथ ब्राह्मण के रूप में हमें बताया गया है कि एक महिला, एक शूद्र, एक कुत्ता और एक कौवा असत्य, पाप और अंधकार के अवतार हैं [XIV.11.31]।

जातक कथाओं में महिलाओं को कामुकता से भरा हुआ बताया गया है। जैसे उनमें लिखा है कि महिलाओं को न तो सुंदरता की परवाह होती है, न ही उनका ध्यान उम्र पर टिका होता है; यह सोचकर कि वह एक आदमी है, वे अपने आप को सुंदर और कुरूप को दे देते हैं। पुरुषों के प्रति अपने जुनून के माध्यम से, अपने परिवर्तनशील स्वभाव के माध्यम से, अपनी स्वाभाविक हृदयहीनता के माध्यम से, वे अपने पतियों के प्रति विश्वासघाती हो जाती हैं, चाहे कितनी भी सावधानी से उनकी रक्षा की जाए [मनु IX। 15]. वैदिक काल से महिलाओं की बुरी स्थिति का या उनके अधीनता का सबसे बड़ा कारण रहा वह मनु है। उन्होंने अपनी निम्न समझ से बताया कि औरतों की झूठ बोलने की, यहाँ-वहाँ बैठने की, गहनों से प्रेम करने की, गुस्सा, कमीनापन और बुरा बर्ताव करने बुरी आदत होती है। मनु यह लिखता है कि महिलाएँ सहज रूप से कामुक, चंचल दिमाग वाली, प्यार में कमी और अपने पति के प्रति विश्वासघाती होती हैं। यहाँ तक की बारीकी से पहरा देने पर भी। उन्होंने महिलाओं को अपवित्र माना। खासतौर से मासिक धर्म को, वह मानते हैं कि मासिक धर्म ब्रह्म हत्या में महिलाओं की भागीदारी से जुड़ा है। यह एक महिला की जन्मजात अशुद्धता और साथ ही उनकी शारीरिक कामुकता का प्रतीक है। इसलिए मनु मानता है कि महिलाओं के ऊपर हमेशा पहरा रखा जाना चाहिए, चाहे उनकी कोई भी उम्र हो, दिन हो या रात हो। मनु के अनुसार जिस महिला पर सबसे ज्यादा पहरा देना है, या नियंत्रण रखना है, वह पत्नी है। क्योंकि पत्नी से उसके पति के बच्चे का जन्म होता है यदि पत्नी का चाल चलन सही नहीं हुआ तो परिवार सही नहीं होगा।

इन सभी पारंपरिक और धार्मिक कारणों ने पुरुषों के भीतर महिला की लैंगिकता को नियंत्रित करने का मार्ग खोला है। उन्हें महिला की अनियंत्रित लैंगिकता से डर लगने लगा है। उनके मन-मस्तिष्क में यह कुविचार भर चुका है कि औरत के संभोग आकांक्षा कभी पूरी या खत्म नहीं हो सकती। इसलिए महिलाओं को नियंत्रित करने के कुछ यांत्रिक तत्त्व का निर्माण किया गया। जिसमें सर्वप्रथम है विचारधारा, विचारधारा के द्वारा महिलाओं के जेहन में स्त्री-धर्म या पतिव्रता धर्म और पर्दा प्रथा को उतारा गया। चक्रवर्ती मानती हैं कि यह सभी चीजें ऊँच-नीच असमानता का संगठनात्मक ढाँचा है। महिलाओं के सामने ऐसी स्त्रियों का उदाहरण पेश किया गया, जो अपने पति के अधीन रहती थी और पतिव्रता धर्म का पालन करती थी। जैसे सीता, सावित्री, अनुसूया, अरुंधति आदि। यहाँ गौर करने लायक यह बात है कि सीता और संबुला की कहानी लगभग एक समान ही है, जबकि दोनों ही अलग-अलग धर्मों का उदाहरण पेश करती है। जहाँ सीता हिंदू धर्म के लिए देवी मानी जाती है, वहीं संबुला को बौद्ध धर्म में बेहद पवित्र माना गया है।

महिलाओं के नियंत्रण के लिए जो दूसरा हथकंडा अपनाया गया, वह ब्राह्मणवादी सामाजिक नियम हैं जिनके द्वारा महिलाओं को हमेशा पुरुषों के अधीन रखा गया। इस व्यवस्था से यह सुनिश्चित किया गया कि एक महिला अपने पति के अलावा किसी अन्य पुरुष के संपर्क में ना आए, वह घर में ही रहे, उसका कहीं और बाहर आना-जाना ना हो। यदि वह पति की अनुमति के बिना कहीं बाहर जाती है, किसी और पुरुष से बातचीत करती है, तो वह पापी है उसे दंड दिया जाना आवश्यक है।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

तीसरा तरीका महिलाओं को नियंत्रित रखने के लिए पितृसत्तात्मक राज्यों द्वारा अपनाया गया। राज्य या सभा मुख्यतः महिलाओं की पवित्रता को बचाने का काम करते थे, ताकि जाति की पवित्रता बनी रहे और ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था चलती रहे।

उमा चक्रवर्ती के लेखों से जो मुख्य बात निकल कर आई वह यह थी कि जेंडर और जाति आपस में जुड़े हुए हैं। उन्होंने महिलाओं की बुरी स्थिति के लिए वैदिक परंपरा को दोषी माना। जिसमें मनु, जातक कथाएँ, महाभारत, रामायण जैसे महा ग्रंथ हमेशा ब्राह्मणवादी पितृसत्ता को स्थापित करने की कोशिश करते रहे। यह सभी प्रयास केवल और केवल जाति व्यवस्था को बचाए रखने के लिए किया गया, ताकि ब्राह्मणवादी परंपरा चलती रहे और निम्न जातियाँ और महिलाएँ उनके अधीन रहे। ब्राह्मणवादी परंपरा द्वारा महिलाओं को नियंत्रित रखने का मुख्य कारण यह है कि वह महिलाओं को जाति व्यवस्था को दूषित करने या अन्य जाति के प्रवेश करने के द्वार के रूप में देखते रहे। उन्हें लगता था यदि कोई शूद्र या निम्न जाति का पुरुष उच्च जाति की महिला से संबंध बनाता है या संतान को जन्म देता है, तो इससे जाति व्यवस्था को या वर्ण व्यवस्था को खतरा पैदा होगा। यही कारण था कि ब्राह्मणवादी सोच रखने वाले हमेशा अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए अपने घर की, और अपनी जाति की औरतों को नियंत्रित करते रहे।

बाला देवी अपने लेख 'भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की वैदिक तथा मध्यकालीन स्थिति की तुलनात्मक सामाजिक विवेचना' में वर्णन करती हैं कि वैदिक काल में महिलाओं को निम्न दृष्टि से देखा गया, पर उनकी स्थिति में गिरावट मुख्य रूप से उत्तर-वैदिक काल से आई। वह मानती हैं कि मध्यकाल में महिलाओं के विरुद्ध बहुत सारी कुरीतियाँ प्रचलित हो गई, जिसमें सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनः विवाह पर रोक और पर्दा प्रथा मुख्य थी। बाला देवी इन सभी कुरीतियों के कारण को खोजते हुए बताती हैं कि विदेशी आगमन, महिलाओं की निम्न स्थिति का कारण है। मुगल शासन, सामंती व्यवस्था, विदेशी आक्रमण और शासकों का विलासिता पूर्ण प्रकृति इन सभी तत्त्वों ने महिलाओं को उपभोग की वस्तु बना दिया। इस संकट से बचाने के लिए धार्मिक रूप से बहुत सारी कुरीतियों, रीति-रिवाजों का निर्माण किया गया ताकि महिलाओं को दूसरों से बचाया जा सके। लेकिन बाला देवी यह भूल रही हैं कि जिन तरीकों का इस्तेमाल महिलाओं की सुरक्षा या संरक्षण के लिए किया गया वह पुरुष प्रधानता या पितृसत्तात्मक सोच रखने वालों के द्वारा लागू किए गए, महिलाओं की इसमें कोई भागीदारी नहीं थी। वह तो बस इन सामाजिक कुरीतियों का पालन मजबूरन कर रही थीं।

बहरहाल बाला देवी यह भी बताती हैं कि मध्यकाल महिलाओं के संघर्ष का युग भी है, जिसमें बहुत सारे समाजसेवी महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए उनका सही संरक्षण करने के लिए लड़ रहे थे। उन्नीसवीं सदीं के पूर्वार्द्ध में भारत के कुछ समाजसेवियों जैसे राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द विद्यासागर तथा केशवचन्द्र सेन ने अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठायी। इन्होंने तत्कालीन अंग्रेजी शासकों के समक्ष स्त्री पुरुष समानता, स्त्री शिक्षा, सती प्रथा पर रोक तथा बहु विवाह पर रोक की आवाज उठायी। इसी का परिणाम था सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829, 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1891 में एज ऑफ कन्सटेन्ट बिल,1891 में बहू विवाह रोकने के लिए मैरिज एक्ट पास कराया। इन सभी कानूनों का समाज पर दूरगामी परिणाम हुआ।

वैदिक काल और मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति को जानने के बाद सबसे ज्यादा जरूरी है कि वर्तमान में उनकी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

स्थिति को समझा जाए और यह देखा जाए कि भारत में नारीवादी किस प्रकार से काम कर रहे हैं? इसके लिए हमें कमला भसीन जो कि अपने आप को विकासवादी नारीवादी के रूप में देखती हैं, उनकी नारीवादी समझ और माँगों पर ध्यान देना होगा।

कमला भसीन अपनी कृति *What is Patriarchy?* में एक अनूठी लेकिन सार्थक समझ को स्थापित किया और भारत में पूँजीवादी पितृसत्ता का वर्णन किया, जिसको वह इस प्रकार परिभाषित करती हैं "बड़े पैमाने पर अश्लील साहित्य और सौंदर्य प्रसाधन उद्योग जो महिलाओं, और साथ ही साथ लोकप्रिय मीडिया और अन्य पुरुष-केंद्रित उद्योगों का समर्थन करती है, वह खतरनाक जेंडर भूमिकाओं और रूढ़िवादिता को बढ़ावा देते हैं, कमला भसीन इसको 'पूँजीवादी पितृसत्ता' के रूप में संदर्भित करते हैं।" वह यह भी वर्णन करती हैं कि पूँजीवादी में हर बिकने योग्य चीज़ बिकती है। जिससे पुरुषों के मन-मस्तिष्क पर मात्र लाभ कमाने का जुनून होता है, यही उन्हें अमानवीय और हिंसक बना देता है।

अपनी एक अन्य कृति *Understanding Gender* में कमला भसीन वर्णन करती हैं कि सेक्स एक चीज है, लेकिन जेंडर बिल्कुल दूसरी चीज है। हर कोई पुरुष या महिला पैदा होता है और हमारे लिंग का निर्धारण हमारे जननांगों द्वारा किया जा सकता है, लेकिन लड़कियों और लड़कों के लिए जन्म से जो सामाजिक और सांस्कृतिक पैकेजिंग की जाती है वह जेंडर है। जैसा कि हमारे समाज में बच्चे के जन्म से ही भेदभाव शुरू हो जाता है अगर कोई लड़का पैदा होता है तो कमरे में नीले रंग के गुब्बारों से सजाया जाएगा और दूसरी ओर बच्ची के लिए आयोजित कई समारोहों में गुलाबी गुब्बारे को प्राथमिकता दी जाती है और कोई उत्सव नहीं होता है और अनुष्ठान अनिवार्य रूप से आयोजित किए जाते हैं। जैसा कि हम देख सकते हैं कि कैसे जेंडर रंगों से जुड़ा है।

सेक्स सार्वभौमिक है लेकिन समय और स्थान के अनुसार जेंडर बदलता रहता है। उदाहरण के लिए मध्यम वर्ग की लड़की घर या स्कूल तक सीमित हो सकती है, जबकि एक आदिवासी लड़की स्वतंत्र रूप से जंगलों में घूम सकती है। कमला भसीन यह वर्णन करती हैं कि हमारी लड़ाई दो विचारधाराओं की लड़ाई है। यह कहीं भी पुरुषों के खिलाफ लड़ाई नहीं है, बल्कि यह पितृसत्ता की विचारधारा के विरुद्ध लड़ाई है,जो सोचती है कि पुरुष उत्तम है और वह अपने लाभ के लिए महिलाओं पर नियंत्रण कर सकता है। इस विचारधारा के खिलाफ जो दूसरी नारीवादी समानता की विचारधारा का समर्थन करते हैं, जो मानती है कि महिलाएँ और पुरुष अलग हैं लेकिन एक समान, वह दोनों एक समान मानव हैं। अपने नारीवादी आंदोलनों, कविताओं और लेखों से कमला भसीन सदैव महिलाओं के विरुद्ध होने वाली सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ लड़ती रही। वह दहेज प्रथा और बलात्कार के प्रति कानून को परिवर्तित करने के लिए आंदोलन चलाती रहीं। उनका योगदान आधुनिक दौर में भारतीय नारीवादी चिंतन में बहुत बड़ा है।

4.6 नारीवाद के सामने चुनौतियाँ

जिस प्रकार पूर्व स्थापित दमनकारी अत्याचारी व्यवस्थाओं के विरुद्ध लड़ने वालों के सामने चुनौतियाँ होती हैं। वैसे ही कुछ चुनौतियाँ नारीवादियों के सामने भी हैं, लेकिन यह चुनौतियाँ अधिक गहन क्योंकि यह लड़ाई ना सिर्फ राजनीतिक स्तर की नहीं है बल्कि मानसिक स्तर तक भी लड़ी जानी है नारीवादियों की सबसे बड़ी और सबसे बड़ी चुनौती तो यह है कि वह मान्यता प्राप्त सामाजिक सांस्कृतिक, पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना कर रहे हैं। उसके विरुद्ध अपने लिए

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

निष्पक्ष आधार पर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता और समानता की मांग कर रहे हैं। नारीवादियों के लिए सबसे पहले चुनौती समाज द्वारा निर्मित वह मान्यता और मूल्य है जिसको पुरुषत्व या अंग्रेज़ी में musculinity कहते हैं। इस धारणा को पितृसत्ता द्वारा गढ़ा गया है। पितृसत्ता इस पुरुषत्व को बनाए रखने पर जोर देती है, क्योंकि इससे कुछ मूल्यों को निर्मित किया जाता है। जैसे पुरुष उसी को माना जाता है जो निडर हो, ताकतवर हो या जिसके पास शक्ति हो। समाज में इन गुणों को मर्दानगी से जोड़कर देखा जाता है यह गुण समाज में जिस भी व्यक्ति के पास होते हैं उसे मर्द समझा जाता है, यदि कोई व्यक्ति ऐसे गुण नहीं रखता तो उसे शक्तिहीन समझा जाता है या नारी समझा जाता है। कुल मिलाकर यह कहने का प्रयास किया जाता है कि नारी कमजोर होती है। उसमें निडरता, शक्ति और ताकत जैसी कोई चीज नहीं होती। लेकिन सवाल यह उठता है यदि कोई पुरुष इन गुणों के बिना है तो उसका क्या होगा? निवेदिता मेनन बताती हैं कि ऐसे में समाज उन शक्तिहीन पुरुषों का नारीकरण कर देता है। हमारे समाज में ऐसे पुरुषों की भरमार है, जिसे हम या तो दलित पुरुष के रूप में देखते हैं या मजदूर पुरुष के रूप में देख सकते हैं।

दूसरी बड़ी चुनौती यह है कि जेंडर कि अपनी विशिष्ट पहचान बहुत सारी दूसरी पहचानो के कारण धूमिल हो जाती है। क्योंकि जेंडर इन बहुत सारी पहचानों के घेरे में स्थित है। यह पहचान जाति आधारित, नस्ल आधारित या धर्म आधारित हो सकती है। इसलिए एक महिला खुद को पहले महिला के अलावा खुद को किसी विशिष्ट जाति, धर्म या नस्ल से पहचान कर देख सकती है। जिस कारण कई बार महिला अपने अधिकारों के लिए इसलिए न नारीवादी आंदोलनों से नहीं जुड़ती, क्योंकि वह अपने धर्म, जाति, नस्ल का विरोध करने में असमर्थ होती है। यही समस्या नारीवादियों के लिए एक तीसरी चुनौती को भी जन्म देती हैं।

तीसरी चुनौती अधिक जटिल है। जेंडर विभाजन सीधे तौर पर शक्ति के बटवारे से जुड़ा हुआ है, जिसमें पितृसत्तात्मक सोच रखने वाले हमेशा अपनी वर्चस्वकारी स्थिति को बनाए रखने के लिए स्त्रियों को नियंत्रण में रखते हैं और इसके लिए वह सांस्कृतिक-धार्मिक झुनझुना या यूँ कहें अपने-अपने पर्सनल लॉ का इस्तेमाल करते हैं। भारत में हर धर्म के अपने-अपने पर्सनल लॉ हैं, जो यह बताने में तत्पर रहते हैं कि उनके धर्म के अनुसार महिलाओं के लिए क्या सही है या क्या गलत है। उनके धर्म के बाहर किसी और प्रकार की विधिशास्त्र उनके लिए सही नहीं है। भारत में यूनिफॉर्म सिविल कोड की माँग 1937 में शुरू हुई थी पर 1980 के दशक में भारतीय राजनीति सांप्रदायिक रंग में रंग गई और धार्मिक अल्पसंख्यकों की असुरक्षा बढ़ गई इसलिए उन्होंने पर्सनल लॉ का निर्माण करने पर ज़ोर दिया। आप यह पर्सनल लॉ इतने जटिल हो गए हैं कि यह सामान कानून के लिए भी खुद को खत्म नहीं करना चाहते।

4.7 निष्कर्ष

इन सभी चुनौतियों के बावजूद भी नारीवादी महिलाओं के लिए लैंगिक स्वतंत्रता और समानता की मांग करते हैं। क्योंकि उन्हें मालूम है कि जेंडर या लैंगिक असमानता ही कई बार इस पर आधारित हिंसा को जन्म देती है। क्लेयर चैम्बर्स (2008) यह बताती हैं, कि स्त्री-पुरुष के बीच इस असमानता से लैंगिक हिंसा बढ़ती है। जैसे महिलाओं के खिलाफ बलात्कार और हिंसा, महिलाओं को हमेशा पुरुषों के बराबर नहीं होने देते। क्योंकि इस प्रकार की घटनाएँ महिलाओं के अंदर डर भर देती हैं और महिला कभी भी डर के कारण समानता का प्रयोग नहीं कर पाती। अंधेरा होते ही वह बाहर जाने से डरती है अनजान लोगों से मिलने से डरती है क्योंकि उसे लगता है कि उसके साथ कुछ गलत हो जाएगा। लेकिन तथ्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

©DDCE/COL/SOL/University of Delhi

कहते हैं के 80% बलात्कार और हिंसा की घटनाएँ महिलाओं के साथ उनके परिचित उनके घर में ही करते हैं फिर भी महिलाओं के मन में डर बैठ जाता है और वह कहीं-न-कहीं घर में बंद रहना मज़बूरन पसंद करती हैं।

महिलाओं में इसी भय को देखते हुए मर्दानगी से लबालब लोग महिलाओं के विरुद्ध कोई अपराध करने से नहीं डरते। इसे नारी विरोधी रणनीति के तौर पर भी इस्तेमाल किया जाता है। ताकि उनकी माँगों या आन्दोलन को दबाया जा सके।

ऐसा नहीं है कि समानता सिर्फ नारीवादियों के लिए ही आवश्यक है, बल्कि इसकी आवश्यकता पुरुषों के लिए भी बहुत है। पुरुष प्रधान समाज को हमेशा से अपने लिए लघु-आवधि लाभ दिखाई देते रहे, इसलिए उन्होंने इसके दीर्घ-कालिक नुकसान कभी देखने का प्रयास नहीं किया। इस कारण समाज में कार्मिक भागीदारी असंतुलित हो गई। पुरुष-प्रधानता के कारण महिलाएँ जितनी घरेलू क्षेत्र में सिमट कर रह गई, पुरुषों सार्वजनिक क्षेत्र का भार उतना ही बढ़ गया है। पुरुष अपने जीवन में हमेशा रोटी, कपड़ा और मकान की जद्दोजहद फँसा रहता है, अर्थात् रोज़गार, खाना और आश्रय पाने के लिए पूरी ज़िंदगी लगा देता है। इस सबका जो मानसिक तनाव वो अलग। यहाँ प्रश्न यह है कि क्या यह तनाव घरेलू हिंसा का कारण हो सकता है? यह एक प्राकल्पना भी हो सकती है, जिसकी जाँच होना आवश्यक है।

इन समस्याओं का हल बेहतर ढँग से घरेलु और सार्वजनिक भागीदारियों को साझा करके ही हो सकता है। इसके लिए स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर एक दूसरे हाथ बाँटना होगा। अन्यथा दोनों अपनी-अपनी जगह भार के तले दब जाएँगे।

जैसा कि बाला देवी अपने लेख में लिखती हैं, कि इस संदर्भ में योग नायक एवं राष्ट्र निर्माता स्वामी विवेकानंद का यह कथन उल्लेखनीय है "कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वह अपनी समस्याओं को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सके। हमें नारी शक्ति के उद्धारक नहीं, वरन् उनके सेवक एवं सहायक बनना चाहिए। भारतीय नारियाँ संसार के अन्य कहीं भी नारियों की भाँति अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखती है। आवश्यकता है, उन्हें उपयुक्त अवसर देने की, इसी आधार पर भारत के उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ सन्निहित है"।

यदि भारत में सभी अपनी पितृसत्तात्मक सोच को खत्म कर या इससे स्वतंत्र होकर कार्य करेंगे तो हमें काफी सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते रहेंगे। जैसे कुछ एक परिणाम आज भी हम देख सकते हैं। महिलाएँ कभी भी पुरुषों से कम नहीं रही हैं। भारत में राजनीतिक क्षेत्र में देखा जाए पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, लोकसभा स्पीकर मीरा कुमार के साथ-साथ कई राज्यों कि मुख्यमंत्री महिलाएँ रह चुकी हैं, जिनमें मायावती, जयाललिता, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, वसुंधरा राजे आदि जैसे नाम उल्लेखनीय है। वहीं खेल के क्षेत्र में देखें तो सानिया मिर्जा, अंजू बॉबी जॉर्ज, पीटी ऊषा, एमसी मैरीकॉम, साइना नेहवाल पीवी सिंधु, मिताली राज, झूलन गोस्वामी, हरमनप्रीत कौर और ना जाने ऐसे कितने नाम हैं, जो आज प्रसिद्धि पा चुके हैं। यह वो क्षेत्र हैं, जिसमें दिमागी और शारीरिक क्षमता की आवश्यकता होती और पितृसत्तात्मक संकुचित सोच यह मानती है कि महिलाओं में ऐसी क्षमताओं की कमी होती है। लेकिन वास्तविकता उनकी सोच के उलट है। वह भी महिलाओं पर तमाम पाबंदियों के बाद भी सोचिए यदि परिस्थितियाँ समान होतीं तो परिणाम और भी बेहतर होते।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

4.8 वैकल्पिक प्रश्न

1. इनमें से कौन नारीवाद के ऐतिहासिक विकास को जाँचती हैं?

   मैरी वॉल्सटॉनक्राफ्ट (ब) विक्टोरिया ब्राऊन

   (स) कमला भसीन (द) सिमोन दी बुआ

2. *Vindication of the Right of Woman* नाम की रचना किसकी है?

   (अ) सिमोन दी बुआ (ब) मैरी वॉल्सटॉनक्राफ्ट

   (स) जे एस मिल (द) उमा चक्रवर्ती

3. *Subjugation of Women* किसकी रचना है?

   (अ) जूडिथ बटलर (ब) विक्टोरिया ब्राऊन

   (स) जे एस मिल (द) कमला भसीन

4. इनमें से सिमोन दी बुआ की रचना है।

   (अ) *The Second Sex*

   (ब) *Understanding Gender*

   (स) *Vindication of the Right of Woman*

   (द) *What is Patriarchy*

5. इनमें से एक उत्तर-आधुनिक नारीवादी हैं।

   (अ) जे एस मिल (ब) जूडिथ बटलर

   (स) सिमोन दी बुआ (द) मैरी वॉल्सटॉनक्राफ्ट

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. नारीवाद क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों सहित व्याख्या करें।
2. सिमोन दी बुआ के कथन “कोई औरत पैदा नहीं होती, बल्कि औरत बन जाती है” से आप क्या समझते हैं?
3. भारतीय नारीवादी विमर्श क्या है?
4. भारतीय व पश्चिमी नारीवादी विमर्श में क्या अंतर है?
5. नारीवाद के सामने क्या चुनौतियाँ हैं?

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE/COL/SOL/University of Delhi

4.10 सन्दर्भ-सूची

- Menon, Nivedita ‘Fender’s in Bhargava, Rajeev and Acharya,Ashok (ed.) (2008) *Political Theory: An Introduction* (New Delhi:Pearson)
- Chambers, Clare ‘Gender' in McKinnon, Cartiona (ed.) (2008) *Issue in Political Theory* (New York:Oxford Uni. Press)
- Browne, Victoria ‘Political Ideologies' in Axford,Barrie, Browne, Victoria Huggins, Richard Issacs,Rico (ed.) (2019) *Politics An Introduction* (London:Routledge)
- Walters, Margret (2005) *Feminism: A Very Short Introduction* (New York: Oxford University Press)
- Chakravarti, Uma (03 April, 1993) ‘Conceptualizing Brahamanical Patriarchy in Early India’, Vol. 28, issue no. 14 (*Economical and Political Weekly*)
- Bhasin, Kamla (1993) *What is Patriarchy* (New Delhi: Kali for Women)
- Bashin, Kamla. (2003). *Understanding gender*. (New Delhi: Women Unlimited)
- देवी, बाला (April, 2018) ‘भारत मे महिलाओं की वर्तमान स्थिति की वैदिक तथा मध्यकालीन स्थिति की तुलनात्मक सामाजिक विवेचना’, Vol. no. XV, issue no. 1 (*Journal of Advances and Scholarly Research in Allied Education*)

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-5

राजनीतिक समुदाय का विचार : राजनीतिक दायित्व

काजल

संरचना

5.1 परिचय
5.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में राजनीतिक दायित्व
5.3 राजनीतिक दायित्व: अवधारणा की उत्पत्ति और प्रकृति
5.4 राजनीतिक दायित्वों के लक्षण
5.5 राजनीतिक दायित्व वैचारिक दायित्व
5.6 राजनीतिक दायित्व के विभिन्न सिद्धांत
5.7 सहमति/सामाजिक अनुबंध सिद्धांत: इच्छा में स्वीकृति
5.8 राजनीतिक दायित्व के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत की आलोचना
5.9 निर्देशात्मक सिद्धांत: स्थापित सम्मेलनों और परंपराओं के सम्मान में स्वीकृत
5.10 प्रश्न
5.11 संदर्भ-सूची

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

5.1 परिचय

एक राजनीतिक वैज्ञानिक का सारोकार केवल सत्ता के अध्ययन तक ही सीमित न होकर सत्ता की समस्या को उजागर करना भी होता है जो उन व्यक्तियों को स्वीकार्य होती हैं, जिन पर इसका प्रयोग किया जाता है। राजनीतिक दायित्व की अवधारणा का अध्ययन आवश्यक रूप से संबंधित शर्तों की जाँच की ओर ले जाता है, जिसे राजनीतिक वैधता भी कहते हैं। किसी देश या राज्य के कानूनों का पालन करने के लिए एक नैतिक कर्तव्य होना ही राजनीतिक दायित्व है। जिसके संदर्भ में राजनीतिक दार्शनिकों की पूर्ण सहमति देखने को मिलती है। परंतु इस प्रश्न को लेकर सदैव विमर्श रहा है कि कोई इस प्रकार के दायित्व को कैसे प्राप्त करता है? जबकि राजनीतिक दायित्व की अवधारणा राजनीतिक दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी है जो वैधता और प्रभावशीलता की धारणाओं के साथ एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हुए हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

5.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में राजनीतिक दायित्व

वाक्यांश "राजनीतिक दायित्व" स्पष्ट रूप से 1879-80 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में दिए गए टी.एच. ग्रीन के राजनीतिक दायित्वों के सिद्धांतों के व्याख्यान से अधिक पुराना नहीं है (डी'एंट्रेव्स, पृष्ठ 3)। जिन दो शब्दों से ग्रीन ने वाक्यांश का निर्माण किया, वह निश्चित रूप से बहुत पुराने हैं और उनका विचार स्पष्ट रूप से यह रहा कि उनके संयोजन के लिए किसी विस्तृत स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। इस विषय में, ग्रीन ने अपने व्याख्यानों में संबोधित समस्या के बारे में बताया था कि "कानून की आज्ञाकारिता के लिए सही आधार या औचित्य की खोज करना आवश्यक है" (ग्रीन 1986, पृष्ठ 13)। सोफिकल्स ने अपने नाटक 'एन्टीगोन' में इस समस्या को उठाया, सर्वप्रथम 440 ईसा पूर्व के आस-पास प्रदर्शन किया और प्लेटो के क्रिटो ने लगभग चालीस वर्ष के पश्चात समस्या के प्रति सुकरात की दार्शनिक प्रतिक्रिया को याद किया।

399 ईसा पूर्व में एक एथेनीयन जूरी ने सुकरात को अधर्म और युवाओं की नैतिकता को भ्रष्ट करने का दोषी ठहराते हुए उसे मृत्यु दंड दिया। प्लेटो के अनुसार, सुकरात के मित्रों ने उसके पलायन की व्यवस्था की थी, परंतु सुकरात ने पलायन न करके तर्क देते हुए घातक हेमलाक को पीने का निर्णय किया। सुकरात के अनुसार, 'उसके विरुद्ध निर्णय की अवहेलना करना उसके समझौतों और प्रतिबद्धताओं को तोड़ना होगा, एथेंस के कानूनों को तोड़ना होगा और अपने मित्रों के साथ 'दुर्व्यवहार' करना होगा' (क्रिटो, 54सी; परीक्षण और मृत्यु, पृष्ठ 54)। प्लेटो द्वारा रचित क्रिटो न केवल राजनीतिक दायित्व की प्रथम दार्शनिक खोज के रूप में उल्लेखनीय है, अपितु सदियों से प्रदर्शित होने वाले अंतिम के रूप में भी उल्लेखनीय है।

5.3 राजनीतिक दायित्व : अवधारणा की उत्पत्ति और प्रकृति

'दायित्व' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'बाध्यता' से हुई है, जिसका अर्थ है 'व्यक्तियों को वह करने के लिए बाध्य करना जो उन्हे सौंपा गया है।' इसके विभिन्न अर्थ हैं। नैतिकता के क्षेत्र में, यह एक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए सूचित करता है, जिसे व्यक्ति ने अपनी तर्कसंगत समझ के आधार पर स्वीकार किया है। न्यायशास्त्र के क्षेत्र में, व्यक्तियों का सामाजिक जीवन कानून द्वारा नियंत्रित होता है और राजनीति में, मनुष्य किसी न किसी अधिकार के अधीन रहने और उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य है। यह व्यक्ति के सामान्य विवेक के सिद्धांत पर आधारित है। जो राजनीतिक दायित्व के विषय प्राधिकरण की प्रकृति से संबंधित मुद्दों पर टिका हुआ है, जिसमे आमतौर पर उपस्थित अधिकारों, कानूनों और राजनीतिक संगठन का सम्पूर्ण विश्व सम्मिलित है।

5.4 राजनीतिक दायित्वों के लक्षण

राजनीतिक दायित्व एक ऐसा ढाँचा है जिसके माध्यम से व्यक्ति 'अधिकार में व्यक्तियों' के आदेशों को स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ है कि इसकी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार है—

- सार्वजनिक विषयों का प्रबंधन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- राजनीतिक वैधता
- प्राधिकार का विरोध

इन विशेषताओं का अध्ययन हमे राजनीतिक दायित्वों की प्रकृति को अधिक स्पष्टता से समझने में सक्षम करता है। किसी भी सरकार के संचालन की कला सरल नहीं होती है। यह एक कठिन और व्यापक कार्य है और किसी भी अनुचित कदम या अनुचित नीतिगत निर्णय से इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इसके विपरीत, सरकार द्वारा व्यक्तियों के लिए उठाया गया एक सकारात्मक या उचित कदम राष्ट्र के विकास के लिए अच्छा परिणाम ही लाएगा। इस प्रकार, प्रत्येक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह सार्वजनिक विषयों, सरकारी नीतियों और राजनीतिक प्रश्नों के प्रबंधन में गंभीर रुचि ले। यह सभी निर्णय व सहभागिता सर्व कल्याण के लिए होगी। राजनीतिक दायित्व सरकार और व्यक्तियों दोनों की ओर से ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और सार्वजनिक भावना की माँग करता है।

राजनीतिक दायित्व की अवधारणा का अध्ययन अनिवार्य रूप से राजनीतिक वैधता और प्रभावशीलता से संबंधित विषय की जाँच की ओर ले जाता है। एक लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता न केवल आर्थिक विकास पर निर्भर करती है, अपितु इसकी वैधता पर भी निर्भर करती है। वैधता में एक विश्वास उत्पन्न करने और बनाए रखने की क्षमता सम्मिलित है, जिसकी उपस्थिति राजनीतिक संस्थान या समाज के लिए सबसे उपयुक्त है और यह सामान्य इच्छा पर निर्भर करती है। दूसरी ओर, प्रभावशीलता का आकलन इस बात से किया जाता है कि एक प्रणाली सरकार के बुनियादी कार्यों को कितना उचित प्रकार से करती है, जिसे जनता की प्रतिक्रिया से मापा जाता है।

राजनीतिक दायित्व का विचार न केवल व्यक्तियों को अधिकार का पालन करने के लिए कहता है, अपितु यह भी चाहता है कि वे अधिकार के प्रयोग के प्रकार के विषय में आलोचनात्मक हों। व्यक्तियों को अपने शासकों की कार्यवाही की जाँच करनी चाहिए और स्वयं की स्वतंत्रता पर बाध्यता का विरोध करना चाहिए। इस प्रकार, राजनीतिक दायित्व के विचार में सत्ता के प्रतिरोध का विचार भी सम्मिलित होता है। किन्तु निश्चित रूप से, राज्य के विरुद्ध विरोध करने का अधिकार जनता के लिए समझ में आने वाले सामाजिक कल्याण के संबंध में स्थापित किया जाना चाहिए और अवज्ञा के परिणामों से राज्य व्यवस्था का पूर्ण विघटन नहीं होना चाहिए।

5.5 राजनीतिक दायित्व – वैचारिक दायित्व

बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक दार्शनिकों ने स्वयं को कम से कम राजनीतिक दायित्वों की समस्या के विश्लेषण के लिए समर्पित किया है। कुछ विचारकों ने यह भी तर्क दिया कि राजनीतिक दायित्वों के अस्तित्व को केवल वैचारिक विश्लेषण द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है। साथ ही, राजनीतिक दायित्वों का पालन करने के लिए समस्याओं को भी उजागर करने का कार्य दार्शनिकों ने किया है।

दायित्व और कर्तव्य— दायित्व और कर्तव्य के संदर्भ में बहुत से तर्क-वितर्क सामने आते रहे हैं। जिसको सुनिश्चित करने के लिए कुछ दार्शनिकों ने दायित्वों और कर्तव्यों के मध्य मतभेदों को उजागर किया है, जिनमे से महत्त्वपूर्ण यह है कि दायित्वों को स्वेच्छा से किया जाना चाहिए, किन्तु कर्तव्यों की आवश्यकता नहीं है (ब्रांट 1964; हार्ट 1958)। जॉन रॉल्स

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इस अंतर को मानते हैं, उनका तर्क है कि एक उचित राजनीतिक समाज के अधिकांश नागरिकों के पास अपने कानूनों का पालन करने का कोई सामान्य दायित्व नहीं है, भले ही उनके पास "स्वाभाविक कर्तव्य" है कि वे केवल संस्थानों का समर्थन करें—एक कर्तव्य जिसका सामान्य प्रभाव है उनसे आज्ञापालन करने की अपेक्षा करना (रॉल्स 1999, पृष्ठ 97)। अधिकांश भाग के लिए, हालाँकि दायित्व और कर्तव्य के मध्य के अंतर ने कानून का पालन करने के लिए कथित नैतिक दायित्व पर बहस में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई है।

दायित्व: राजनीतिक, नागरिक और वैधानिक— राजनीतिक दायित्व की इस अवधारणा से तुरंत एक प्रश्न उठता है कि क्या 'राजनीतिक' उपयुक्त संशोधक है। यदि विचारहीन दायित्व कानून का पालन करना कर्तव्य है, तो इसे कानूनी दायित्व क्यों न कहा जाए? या क्यों न भीखू पारेख के विचारों को सम्मिलित कर निष्कर्ष निकाला जाए कि कानून का पालन करना हमारा कर्तव्य है या नहीं, यह वास्तव में नागरिक दायित्व का विषय है (पारेख 1993, पृष्ठ 240)। अर्थात 'वैध रूप से गठित कानून का सम्मान करने और उसे बनाए रखने का दायित्व' नागरिक प्राधिकरण है, जिसमें राजनीतिक दायित्व के स्थान पर नागरिक प्राधिकरण द्वारा बनाए गए कानूनों का पालन करने के लिए कानूनी दायित्व सम्मिलित है। पारेख के अनुसार, राजनीतिक शब्द व्यापक है और कोई व्यक्ति जिसके पास वास्तव में राजनीतिक दायित्व है, उसकी राजनीति केवल उसके कानूनों के पालन से अधिक होगी। अन्य दार्शनिक भी राजनीतिक दायित्वों को कानूनी दायित्व से करते हैं, किन्तु उस दूरगामी प्रकार से नहीं जो पारेख करते हैं।

दायित्व, नैतिकता और व्यावहारिक कारण— जब टी.एच. ग्रीन ने 1879 में 'कानून की आज्ञाकारिता के लिए वास्तविक आधार या औचित्य की खोज' की, तो वह केवल विवेक से अधिक की खोज कर रहे थे। उनके अनुसार व्यक्ति को कानून का पालन करना चाहिए क्योंकि यदि व्यक्ति ऐसा नहीं करता है तो वह पीड़ित होता है जो आज्ञाकारित का एक शक्तिशाली कारण हो सकता है, किन्तु यह एक ऐसा कारण नहीं है जो ग्रीन के विचार "कानून द्वारा प्रदत्त नैतिक कार्य या वस्तु" के साथ है (ग्रीन 1986, पृष्ठ 13)। ग्रीन के लिए, राजनीतिक दायित्व की समस्या एक नैतिक समस्या है और प्रश्न में दायित्व एक प्रकार की नैतिक जिम्मेदारी है। इसलिए एक राजनीतिक दायित्व होने के लिए, कानून का पालन करने के लिए नैतिक कर्तव्य होना आवश्यक है।

मारग्रेट गिल्बर्ट ने हाल ही में राजनीतिक दायित्व के इस नैतिक चरित्र को चुनौती दी है (गिल्बर्ट 2006; गिल्बर्ट 2013)। वह कहती है कि एक राजनीतिक दायित्व एक वास्तविक दायित्व है, जिसका अर्थ है कि यह एक व्यक्ति को इसके अधीन पर्याप्त, हालाँकि आवश्यक रूप से निर्णायक नहीं, कार्यवाही का कारण प्रदान करता है जो झुकाव या स्वार्थ के विचारों को समाप्त करता है। हालाँकि गिल्बर्ट दो प्रकार के वास्तविक दायित्वों (वह दायित्व शब्द को 2 इंद्रियों के मध्य अंतर करके बताती हैं), पहला नैतिक आवश्यकता का विषय होने का पर्याय है और दूसरा किसी अन्य के लिए 'देयता' के साथ है (गिल्बर्ट 2013, पृष्ठ 391-92)। इसके दूसरे अर्थ में दायित्व दो या दो से अधिक पक्षों के मध्य एक मानक संबंध का वर्णन करता है, जिसे इच्छा के उपयुक्त कार्य के माध्यम से बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जिसे गिल्बर्ट संयुक्त प्रतिबद्धता का अभ्यास कहती हैं। यह दायित्व की दूसरी भावना है कि हमे राजनीतिक दायित्व की समस्या के अपने विश्लेषण में नियोजित करना चाहिए, यहाँ उन दायित्वों के लिए लेखांकन की चुनौती के रूप में समझा जाता है जो लोगों को एक दिए गए राज्य के सह-सदस्यों के रूप में एक दूसरे के लिए जिम्मेदार हैं। यह उस सिद्धांत के विकास को रोकता नहीं है जब नैतिक आवश्यकताएँ व्यक्तियों के राजनीतिक दायित्वों से आगे निकल जाती हैं या हार जाती हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

गिल्बर्ट के अनुसार, यह राजनीतिक दायित्वों के अस्तित्व को राजनीतिक समाज के संस्थानों और कानूनों के न्याय या अन्याय से पूर्ण रूप से अलग करता है। व्यक्ति किसी अन्य को कुछ देने के अर्थ में वास्तविक दायित्वों को प्राप्त कर सकते हैं, तब भी जब उनकी इच्छा के उपयुक्त कार्य बलपूर्वक किया जाता है।

5.6 राजनीतिक दायित्व के विभिन्न सिद्धांत

राजनीतिक दायित्व पर विभिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं। यह सिद्धांत राजनीतिक दायित्व की अवधारणा के पीछे किस प्रकार के प्रतिबंधों की व्याख्या करते हैं यह देखना आवश्यक है।

ईश्वरीय सिद्धांत : आस्था में स्वीकृति

यह सिद्धांत सबसे पुराने सिद्धांतों में से एक है, जो किसी राज्य के शासक की आज्ञाकारित के कारणों की व्याख्या करता है। इसका अर्थ यह था कि शासक ने अपना अधिकार सीधे ईश्वर से प्राप्त किया है। इस प्रकार, लोगों को एक दुष्ट शासक के विरुद्ध भी विद्रोह करने का कोई अधिकार नहीं था। राज्य के अधिकार का पालन करने के लिए व्यक्ति धार्मिक निषेधाज्ञा से बंधा होता है। 'राजाओं के देवीय अधिकारों' का यह विचार पूरे मध्य युग में प्रचलित था। हालाँकि, आधुनिक युग में नई शिक्षा के आगमन के साथ, इसके अपना महत्त्व खो दिया।

राजनीतिक दायित्व के देवीय सिद्धांत की आलोचना

राजनीतिक दायित्व के देवीय सिद्धांत को ग्रोटियस, हॉब्स, लॉक जैसे प्रख्यात विचारकों द्वारा आलोचना का सामना करना पड़ा। जिन्होंने इसके आध्यात्मिक आधार को निर्वासित कर दिया और व्यक्तियों की सहमति से राजनीतिक दायित्व के स्रोत का पता लगाया। जब धर्मनिरपेक्षता के विकास के कारण राज्य और चर्च अलग हो गए, तो आध्यात्मिक शक्तियों के लिए अस्थायी शक्तियां सर्वोच्च हो गई। हालाँकि, लोकतंत्र के विकास ने इस सिद्धांत को नष्ट कर दिया। किसी नेता, वर्ग या पार्टी के ऐतिहासिक मिशन पर आधारित फासीवाद या साम्यवाद जैसे दायित्व के अन्य आध्यात्मिक आधारों को भी विज्ञान से कोई समर्थन नहीं मिल पाया है। ये देवीय अधिकार सिद्धांत के समान धार्मिक क्रम के अंतर्गत है। इस प्रकार, इस सिद्धांत ने आधुनिक युग में अपनी लोकप्रियता खो दी।

5.7 सहमति/ सामाजिक अनुबंध सिद्धांत : इच्छा में स्वीकृति

यद्यपि सामाजिक अनुबंध का विचार आधुनिक युग (गॉफ 1967) से बहुत पहले से था। इसका पूर्ण विकास सत्रहवी शतब्दी में राजनीतिक दायित्व को समझने के लिए अनुबंध के परिष्कृत सिद्धांतों को विकसित किया गया था। जब थॉमस हॉब्स और जॉन लॉक ने सिद्धांत को भिन्न-भिन्न आयामों के लिए प्रयोग किया। जीन जैक रूसो, इमैनुएल कांट और अन्य दार्शनिकों ने भी सामाजिक अनुबंध पर बल दिया है, परंतु राजनीतिक दायित्व के अनुबंध सिद्धांत की क्लासिक अभिव्यक्तियाँ हॉब्स के लिवाइथन (1651) और लॉक की सेकंड ट्रीटीज़ ऑफ गवर्नमेंट में (1690) हैं। इस सिद्धांत की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति थॉमस हॉब्स और जॉन लॉक के लेखन में मिलती है। उनका मत है कि जो व्यक्ति प्रकृति की स्थिति में रहते थे उन्होंने एक अनुबंध में प्रवेश किया जिसके द्वारा राजनीतिक अधिकार अस्तित्व में आया जो पुनः

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

व्यक्तियों की सहमति पर आधारित था।

हॉब्स के अनुसार, सामाजिक अनुबंध सिद्धांत ने उस व्यक्ति के अधिकार को स्थापित किया जो सत्ता चलाने और धारण करने में सक्षम था। हॉब्स के अनुसार, यदि हम स्वयं की कल्पना प्रकृति की स्थिति में करते हैं, तो भले ही कोई सरकार उस अवस्था में नहीं रही हो और हमारा मार्गदर्शन करने के लिए कोई कानून नहीं रहा हो, किन्तु प्रकृति का अपना एक नियम है, हम इसकी पहचान कर लेंगे कि हर कोई स्वाभाविक रूप से समान और स्वतंत्र है (हॉब्स 1651)। किन्तु हमे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि प्रकृति की यह स्थिति भी युद्ध की स्थिति होगी, क्योंकि "सत्ता के बाद सत्ता के लिए असन्तुष्ट इच्छा" जो हम सभी को प्रेरित करती है, वह प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे के विरुद्ध जागरूक करेगी (हॉब्स 1651, अध्याय 11)। इतनी भयावह स्थिति से बचाव के लिए, व्यक्तियों ने एक संप्रभु शक्ति का पालन करने के लिए एक अनुबंध में प्रवेश करके उस व्यक्ति के समक्ष अपनी स्वतंत्रता का आत्मसमर्पण कर दिया, जिसके पास कानून बनाने, लागू करने और कानून की व्याख्या करने का अधिकार होगा। सामाजिक अनुबंध के इस रूप को हॉब्स ने "संस्था द्वारा संप्रभुता" कहा, किन्तु उन्होंने इस विचार पर भी बल दिया कि विजेता उन लोगों पर अधिकार प्राप्त करते हैं जो स्वेच्छा से शासन के अधीन है, यानि "अधिग्रहण द्वारा संप्रभुता"। हॉब्स के अनुसार, किसी भी स्थिति में मनुष्य उन लोगों द्वारा शासन का पालन करने के लिए सहमति देते हैं जिनके पास प्रभावी शक्ति है। क्योंकि वे सहमति देते हैं, इसलिए उनका दायित्व है कि वे संप्रभुता का पालन करें, चाहे संप्रभुता स्थापित की जाए या अर्जित की जाए।

परंतु लॉक अपने निष्कर्षों में हॉब्स से कितने भिन्न है यह विद्वानों के मध्य वाद-विवाद का विषय है। इसमे कोई संदेह नहीं है कि वह उन्ही अवधारणाओं पर काम करते हैं जो अधिक सीमित साध्य प्रतीत होती है। लॉक के अनुसार, प्रकृति की स्थिति में स्वतंत्र और समान व्यक्ति उस राज्य की 'असुविधाओं' पर नियंत्रण प्राप्त करने के प्रकार के रूप में सरकार की स्थापन करते हैं। इसके अतिरिक्त, लॉक के सामाजिक अनुबंध के दो चरण प्रतीत होते हैं। पहले चरण में स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र और समान व्यक्ति कानून के अनुरूप स्वयं को एक राजनीतिक समाज बनाने के लिए सहमत होते हैं और दूसरों में वह सरकार की स्थापन करते हैं। यह कदम लॉक को हॉब्स के विपरीत, इस आधार पर करती के अधिकार के लिए विमर्श करने की अनुमति देते हैं कि सरकार का पतन करने से व्यक्ति तुरंत प्रकृति स्थिति में वापस नहीं आएंगे (लॉक, 1690)।

हालाँकि सामाजिक अनुबंध के विचार ने रूसो के विचार में एक अत्यधिक दार्शनिक रूप ले लिया, जिन्होंने "सामान्य इच्छा" में राजनीतिक दायित्व के तथ्य को दोहराया। इसका अर्थ यह है कि नागरिक समाज में प्रवेश करने के पश्चात मनुष्य अपनी भूख के आवेगों पर पूर्णत: निर्भर नहीं रहता है, अपितु वह सामान्य भलाई के नियम का पालन करने के लिए बाध्य हो जाता है। इस प्रकार, सामाजिक अनुबंध सिद्धांत इस धारणा को सही ठहराता है कि शासक प्राधिकारी, यदि उसे वैध होना है, तो अंततः शासितों की सहमति पर निर्भर होना चाहिए। यदि सरकार अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन करती है, तो व्यक्तियों को विरोध करने का अधिकार है। इस सिद्धांत के निहितार्थ व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करने और शासकों की मनमानी को रोकने की दिशा में रहे है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

5.8 राजनीतिक दायित्व के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत की आलोचना

यद्यपि सत्रहवी और अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक अनुबंध सिद्धांत का अपना क्षेत्र दिवस ठअ और अभी भी, लोकतान्त्रिक व्यवस्था के नैतिक आशार के गठन के कारण इसका अपना महत्त्व है। हालाँकि यह कुछ कमजोरियों से ग्रस्त है। सिद्धांत राज्य को एक कृत्रिम संगठन बनाता है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति की एक काल्पनिक स्थिति में किए गए कुछ अनुबंध में निहित सहमति का तत्त्व एक कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और वर्तमान पीढ़ी पर कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है। इस प्रकार, व्यक्ति इस दलील पर विरोध कर सकते हैं कि वे अपनी सहमति वापस ले। जिसका परिणाम यह होता है कि राजनीतिक दायित्व का सिद्धांत विद्रोह के सिद्धांत में परिवर्तित हो जाता है।

शासितों की सहमति से कानून का पालन करने के दायित्व को प्राप्त करने में, लॉक निश्चित रूप से हॉब्स से सहमत हैं। परंतु यदि अनुबंध को एक ऐसा उपकरण माना जाता है जो यह दर्शाता है कि लोगों ने अपनी सहमति कैसी दी होगी, तो कठिनाई यह है कि एक काल्पनिक अनुबंध बिल्कुल भी अनुबंध नहीं है (डव्क्रिन 1977, पृष्ठ 151)।

हॉब्स के सिद्धांत का परिणाम यह प्रतीत होता है कि हमारा दायित्व है कि हम उस आज्ञा का पालन करें जो व्यवस्था बनाए रख सके और लॉक के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विषय हैं जिनसे हम सहमत नहीं हो सकते हैं। विशेष रूप से, हम अपने आप को एक पूर्ण शासक के अधीन रखने के लिए सहमति नहीं दे सकते, क्योंकि ऐसा करने से उन उद्देश्यों को विफल कर दिया जाएगा जिनके लिए हम सामाजिक अनुबंध में प्रवेश करते हैं, जैसाकि हमारा जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा (पिटकिन 1965)।

सामाजिक अनुबंध सिद्धांत से तर्क के सतह दोष खोजने वाले पहले विद्वानों में से एक डेविड ह्यूम थे। 1752 में प्रकाशित "ऑफ द ओरिजिनल कान्ट्रैक्ट" में, ह्यूम ने मौन सहमति की अपील को विशेष रूप से अपवाद के रूप में लिया। जिसमे उसने विरोध किया कि अधिकतम व्यक्तियों ने अपने मूल देश में रहकर कानूनों का पालन करने की सहमति दी है, जो यह कहने के समान है कि "कोई जहाज के कप्तान के आदेशों का पालन करने के लिए बिना किसी तर्क के सहमति देता रहे, चाहे वह व्यक्ति को सोते समय बोर्ड पर ले जाकर उसे सागर में छलाँग लगाने का आदेश दे और उसी क्षण वह व्यक्ति समाप्त हो जाए" (ह्यूम 1952, पृष्ठ 51)। ह्यूम के अनुसार, कानून का पालन करने का दायित्व सहमति या किसी अनुबंध से नहीं अपितु कानूनों की एक प्रणाली की सीधी उपयोगिता से प्राप्त होता है जो लोगों को अपने हितों को शांतिपूर्वक और सरलता से आगे बढ़ाने में सक्षम बनाता है।

5.9 निर्देशात्मक सिद्धांत : स्थापित सम्मेलनों और परंपराओं के सम्मान में स्वीकृत

इस सिद्धांत के अनुसार, राजनीतिक सत्ता और उसके प्रति श्रद्धा "प्रथागत अधिकारों" के सिद्धांत पर आधारित है। प्राधिकरण वैध है, यदि यह लंबे समय से चली आ रही प्रथा या परंपरा द्वारा स्वीकृत है। लोग अपने शासक की आज्ञा मानते हैं क्योंकि आज्ञाकारिता का तथ्य एक सुस्थापित परंपरा की भांति हो गया है। परंपरावादी राज्य को वर्षों से निर्मित एक भंगुर संरचना के रूप में देखते हैं और जो परस्पर विरोधी हितों के संतुलन का प्रतिनिधित्व कराता है। राज्य जैसे संस्थान धीरे-धीरे विकसित होते हैं और परिवर्तन के अनुकूल होते हैं। इसलिए राज्य के आदिकर को स्वीकार करना और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

केवल क्रमिक शांतिपूर्ण परिवर्तन के लिए काम करते हुए उसका पालन करना कर्तव्य की बात है। राजनीतिक दायित्व के इस रुढिवादी सिद्धांत की पुष्टि हेगल के लेखन में होती है, जो मानते हैं कि नैतिकता के विचार राज्य के रीति-रिवाजों और संस्थानों में ठोस रूप से विकसित होते हैं और चूँकि इस प्रक्रिया में नवीनतम चरण वर्तमान स्थापित व्यवस्था है, इसलिए यह हमारी आज्ञाकारिता प्राप्त करने के अधिकारी है। इसके अतिरिक्त, चूँकि राज्य एक लंबे समय से विकसित और प्रथागत नैतिकता का अवतार है, इसलिए यह हर किसी का कर्तव्य बन जाता है कि वह राज्य द्वारा अपेक्षित कार्य को करे।

बर्क रूढ़िवाद के सबसे प्रसिद्ध प्रतिपादकों में से एक हैं, जो मानते हैं कि मनुष्य के लिए पूर्ण रूप से प्रथा और परंपरा की अवहेलना करना अनुचित है। राजनीतिक दायित्व का तथ्य परंपरा के प्रति असीम सम्मान देने में निहित है, जो एक पवित्र विषय है। इस प्रकार, उन्होंने अमेरिकी उपनिवेशवादियों के विद्रोह का समर्थन किया, जो अंग्रेजों के पारंपरिक अधिकारों के पक्ष में था, किन्तु फ्रांसीसी क्रांति का विरोध किया क्योंकि यह राष्ट्रीय परंपराओं से विभाजनकारी मनुष्य के अमूर्त अधिकारों से प्रेरित था। प्रो एम ओकशॉट दायित्वों के परंपरावादी दृष्टिकोण के समकालीन समर्थक हैं। उनके अनुसार, राजनीतिक क्रियाएं पारंपरिक होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती, क्योंकि राजनीतिक गतिविधि से पहले राजनीतिक प्रतिबिंब उपस्थिति नहीं हो सकता। राजनीति एक कौशल है, जिसे अभ्यास द्वारा सीख जाता है, न कि सैद्धांतिक सिद्धांतों या प्रणालियों के माध्यम से। इसलिए, जब हम अन्य व्यक्तियों की राजनीति को समझने का प्रयास करते हैं, तब भी यह हमेशा हमारे अपने ढांचे के भीतर होता है।

राजनीतिक दायित्व के निर्देशात्मक सिद्धांत की आलोचना

अन्य सिद्धांतों की भाँति, निर्देशात्मक सिद्धांत की अपनी कमजोरियाँ है। राजनीतिक दायित्व का स्रोत न केवल अच्छे प्रकार से स्थापित प्रथाओं का सम्मान करना है, अपितु उन्हें दूर करना भी है। व्यक्ति परिवर्तन चाहते हैं और यदि उनकी आशाएँ निराश होती हैं, तो वे क्रांति के मार्ग पर चल पड़ते हैं। ओकशॉट की इस आधार पर विशेष रूप से आलोचना की गई है कि वह एक क्रांति को भी अतीत से जुड़े अनुभव के रूप में मानते हैं और इस प्रकार इसे पूर्ण रूप से रूढ़िवादी विषय बनाते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस सिद्धांत के प्रतिपादक अफ्रीकी देशों के नीग्रो को नस्लीय भेदभाव कानूनों को 'वैध' के रूप में स्वीकार करने की सलाह देंगे क्योंकि वे क्षेत्र की उचित स्थापित परंपराओं पर आधारित है। हालाँकि, यह वास्तविकता से बहुत दूर है। वास्तव में, लोग केवल अपनी परंपराओं का पालन करते हैं, जहाँ तक उनकी उपयोगिता है और जब उनकी उपयोगिता उपस्थित नहीं है तो उन्हे दूर कर देते हैं।

आदर्शवादी सिद्धांत : मौषय की तर्कसंगतता में स्वीकृत

आदर्शवादी व्यक्ति की जन्मजात तर्कसंगतता में राजनीतिक दायित्व के स्रोत का पता लगाते हैं। मनुष्य को एक राजनीतिक और तर्कसंगत प्राणी और राज्य को पूरे समाज के समान आत्मनिर्भर समुदाय के रूप में माना जाता है। इस प्रकार, व्यक्ति और राज्य के मध्य कोई विरोध नहीं हो सकता है। परिणामस्वरूप, एक व्यक्ति राज्य के आदेश का पालन करके अकेले समाज में अपने सर्वोत्तम संभव विकाश की खोज कर सकता है। दूसरे शब्दों में, राजनीतिक दायित्व का स्रोत राज्य के प्रति आज्ञाकारिता में निहित है। प्लेटो और अरस्तू दोनों ने पुष्टि की थी कि राज्य और इसमे सम्मिलित व्यक्ति एक जैविक सम्पूर्ण बनाते हैं। इस प्रकार की पुष्टि हेगल के विचारों में सबसे अच्छी अभिव्यक्ति प्राप्त किए हुए हैं जो व्यक्ति की स्वतंत्रता को राज्य के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता के साथ पहचानती है। ग्रीन भी कहते हैं कि राजनीतिक दायित्व का विचार नैतिक

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दायित्व के विषय से जुड़ा है। उनका सुझाव है कि केवल उन्ही कार्यों को दायित्व बनाया जाना चाहिए, जो एक निश्चित नैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए जाते हैं।

निर्देशात्मक सिद्धांत: स्थापित सम्मेलनों और परंपराओं के सम्मान में स्वीकृत

आदर्शवादी सिद्धांत की बहुत अधिक अमूर्त होने के आधार पर आलोचना की गई है। यह साधारण विचारों को अत्यधिक दार्शनिक या आध्यात्मिक रूप में रखते हैं, जिसे औसत समझ वाले व्यक्ति द्वारा नहीं समझ जा सकता है। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक दायित्व का विचार न केवल राज्य के प्रति मनुष्य की आज्ञाकारिता से संबंधित है, अपितु राजनीतिक अधिकार के दुरुपयोग का विरोध करने के उसके अधिकार से भी जुड़ा हुआ है। आदर्शवादी अपने राजनीतिक दायित्व के सिद्धांत में प्रतिरोध के अधिकार को सम्मिलित करने के लिए अनिच्छुक हैं। भले ही ग्रीन और बोसानक्वेट ने कुछ असाधारण स्थितियों में अधिकार को मान्यता दी हो, उनका उपचार अस्पष्ट और अनिश्चित है और अंग्रेजी उदारवाद के प्रभुत्व को कम करने में विफल रहा है। त्रेत्स्के द्वारा राज्य की पूजा करने की बात भी की गई है। इस प्रकार, राजनीतिक दायित्व का विचार सत्ता की अंधी पूजा के निषेधाज्ञा में परिवर्तित हो जाती है।

एक मुख्य अर्थ में राजनीतिक दायित्व का विचार राजनीतिक नहीं, अपितु एक नैतिक विषय है। हालाँकि नैतिकता का मानदंड समय-समय पर विभिन्न स्थानों और व्यक्तियों में अलग-अलग होता है, इसलिए राजनीतिक दायित्वों के आयाम भी भिन्न होते हैं और इसी प्रकार, लोकप्रिय प्रतिरोध के आदेश भी भिन्न होते हैं। न्याय प्राप्त करने के लिए राज्य एक आवश्यक साधन है और यदि वह व्यापक सहमति के आधार पर ऐसा करता है, तो यह एक प्रकार की संविदात्मक समझ होती है कि न्याय और अच्छाई को बढ़ावा देने के लिए राज्य जो करता है, उसके बदले में हम पालन करने का वचन देते हैं।

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. राजनीतिक दायित्व का क्या अर्थ है?

2. क्या राज्य का पालन करना हमारा राजनीतिक दायित्व है? उदार लोकतांत्रिक गणराज्य में सविनय अवज्ञा के दायरे की चर्चा कीजिए।

3. 'हमें राज्य की आज्ञा क्यों माननी चाहिए' के प्रश्न पर प्रमुख बहसों का विवरण प्रदान कीजिए?

4. राज्य के प्रति राजनीतिक दायित्व के विचार पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5.11 संदर्भ सूची

- Brandt, Richard, 1964. "The Concepts of Obligation and Duty," *Mind*, 73: 374-93.
- D'Entreves, A.P., 1939. *The Medieval Contribution to Political Thought*, Oxford: Oxford University Press.

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- Durning, Patrick, 2003. "Two Problems with Deriving a Duty to Obey the Law from the Principle of Fairness," *Public Affairs Quarterly*, 17: 253-64.
- Dworkin, Ronald, 1977. *Taking Rights Seriously*, Cambridge, MA: Harvard University Press.
- Barker, E., 1967. *Principles of Social and Political theory*, London: Oxford University Press.
- Gilbert, Margaret, 1993. "Group Membership and Political Obligation," *The Monist,* 76:119-31.
- Gilbert, Margaret, 2006. *A Theory of Political Obligation*, Oxford: Oxford University Press.
- Green, T.H., 1986. *Lectures on the Principles of Political Obligation and Other Writings*, P. Harris and J. Morrow (eds.), Cambridge: Cambridge University Press.
- Hobbes, Thomas, 1991[1651]. *Leviathan*, R. Tuck (ed.), Cambridge: Cambridge University Press.
- Lefkowitz, David, 2004. "The Nature of Fairness and Political Obligation: A Response to Carr," *Social Theory and Practice*, 30: 1-31.
- Locke, John, 1980[1690]. *Second Treaties of Government*, C.B. Macpherson (ed.), Indianapolis: Hackett Publishing Co.
- Parekh, Bhiku, 1993. "A Misconceived Discourse on Political Obligation," *Political Studies*, 21: 199-218.
- Pitkin, Hanna, 1965/66. "Obligation and Consent," "Part One," *American Political Science Review*, 60: 39-52.
- Plato, 2000. "The Trial and Death of Socrates", 3rd edition, G. M.A. Grube (trans.), Indianapolis: Hackett Publishing Co.
- Rawls, John, 1964. "Legal Obligation and the Duty of Fair Play," in *Law and Philosophy*, S. Hook (ed.), New York: New York University Press.

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*